वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६० अंक १
जनवरी २०२२

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६०

अंक १

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

पौष, सम्वत् २०७८
जनवरी २०२२

अनुक्रमणिका

* विवेकानन्द के ज्वलन्त मन्त्र ६
* प्रेम, करुणा, सहानुभूति और क्षमाशीलता की प्रतिमूर्ति : श्रीमाँ सारदा (स्वामी निखिलेश्वरानन्द) ९
* (बच्चों का आंगन) आपसे बड़ा बलिदानी पुरुष क्या कोई हो सकता है? (स्वामी गुणदानन्द) १७
* कन्याकुमारी के शिलाखण्ड पर स्वामी विवेकानन्द (स्वामी तन्निष्ठानन्द) १८
* स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्र-ध्यान से अनुप्राणित हिन्दी काव्यधारा (लखेश चन्द्रवंशी) २५
* (युवा प्रांगण) वास्तविक सहायता (आशा गुप्ता) ३३
* प्राच्य-पाश्चात्य मनीषियों की दृष्टि में भारत ३४
* सुख सुविधाओं में नहीं, भगवान के नाम में है (स्वामी सत्यरूपानन्द) ३९
* (कविता) वीर विवेकानन्द महान (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ११
* (कविता) उठो जागो दुर्बलता त्यागो (मोहन सिंह मनराल) १६
* पुस्तक प्राप्ति २४

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ५
पुरुखों की थाती ५
सम्पादकीय ७
वरिष्ठ साधुओं की स्मृतियाँ १२
सारगाछी की स्मृतियाँ २३
रामराज्य का स्वरूप २९
श्रीरामकृष्ण-गीता ३१
प्रश्नोपनिषद् ३३
गीतातत्त्व-चिन्तन ३५
आध्यात्मिक जिज्ञासा ४०
साधुओं के पावन प्रसंग ४३
समाचार और सूचनाएँ ४६

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

***विवेक-ज्योति* दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५,** ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com**
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
वेबसाइट : www.rkmraipur.org रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति १७/–	१६०/-	८००/-	१६००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	५० यू.एस. डॉलर	२५० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिये	२००/–	१०००/–	

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : रायपुर (छत्तीसगढ़)
अकाउण्ट नम्बर : 1 3 8 5 1 1 6 1 2 4
IFSC : CBIN0280804

* कृपया सदस्यता राशि जमा करने के बाद इसकी सूचना हमें तुरन्त **फोन, मोबाईल, एस.एम.एस., व्हाट्सएप, ई-मेल** अथवा **स्कैन द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड नं.** के साथ भेजें।
* विवेक-ज्योति पत्रिका के सदस्या किसी भी माह से बन सकते हैं।
* पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूर्ण होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।
* विवेक-ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमियता के कारण कई बार पत्रिका सदस्यों को नहीं मिलती है, अत: पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे कई सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है। पत्रिका न मिलने की शिकायत माह के अंत में ही करें। अंक उपलब्ध होने पर ही पुन: प्रेषित किया जायेगा।
* सदस्यता, एजेन्सी, विज्ञापन एवं अन्य विषयों की जानकारी के लिए 'व्यस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन नि:शुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

जनवरी माह के जयन्ती और त्यौहार

८ स्वामी सारदानन्द
९ गुरु गोबिन्द सिंह
१६ स्वामी तुरीयानन्द
२५ स्वामी विवेकानन्द
२६ गणतन्त्र दिवस
१३,२८ एकादशी

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ की मूर्ति रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द सोसायटी, जमशेदपुर द्वारा संचालित साक्ची में स्थित विवेकानन्द स्टूडेन्ट होम की है। जिसका अनावरण २ फरवरी, २०२१ को झारखण्ड की राज्यपाल श्रीमती द्रोपदी मुरमु ने किया।

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री सतीन्द्र कुमार शर्मा, सनी वेली, सोलन (हि.प्र.)	१,१००/-
डॉ. ईश्वरचन्द्र गुप्ता, चौपासनी, जोधपुर (राज.)	१,०००/-

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६७२.	श्री अर्जुन भोजवानी सुभाष नगर, बिलासपुर (छ.ग.)	सेन्ट्रल जेल लाईब्रेरी, अम्बेडकर चौक, बिलासपुर (छ.ग.)
६७३.	श्री केजुराम साहू, पचपेड़ी नाका चौक, रायपुर (छ.ग.)	'प्राचार्य' शा.उ.मा. शाला, सांकरा, जिला- धमतरी (छ.ग.)

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा। – स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र १८००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता **– व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. १०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर' !

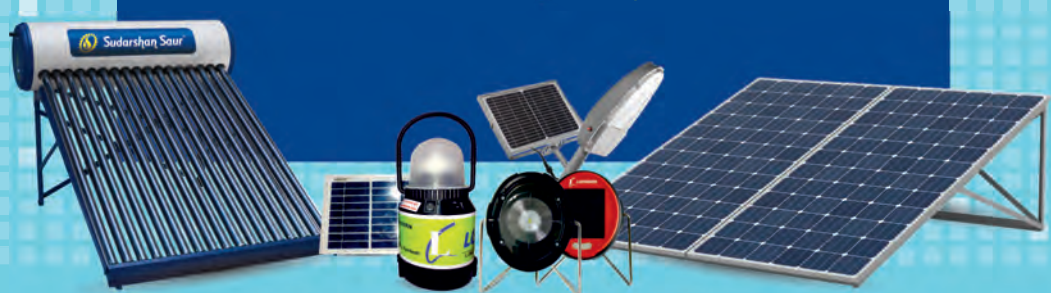

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखों संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com

Toll Free
1800 233 4545

E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६० **जनवरी २०२२** **अंक १**

विवेकानन्द वन्दना

अविद्याया वैरी श्रुतिविहितविद्यामधुकरः
सुखे चानासक्तः परमपदचिन्तास्थिरमतिः।
जगत्-सेवा-मन्त्रैर्जगदधिपतेः पूजनपरो
विवेकानन्दोऽसौ भुवि सुविरलो मानवगुरुः।।

– अविद्या के शत्रु, वेदविहित आत्मविद्या के मधुपान में रत, सुख से अनासक्त, परमपद ब्रह्म के चिन्तन में लीन, विश्व के सेवा-मन्त्र में लोकाधिपति, भगवत् पूजा में रत, ये विवेकानन्द संसार में अत्यन्त विरल श्रेणी के मानव-गुरु थे।

दरिद्राणां बन्धुर्निखिलमनुजानां प्रियकरः
समो ज्ञाने कर्मण्यविचलितभक्त्यां गुरुपदे।
समः शत्रौ मित्रेऽप्रतिममहिमोद्दीप्ततपनो
विवेकानन्दो मे हृदयगगने भातु सततम्।।

दीनों के बन्धु, सकल मानवों के हितैषी, ज्ञान और कर्मयोग में समान दक्ष, गुरुचरणों में अचल भक्तिवाले, शत्रु-मित्र में समदरसी, अतुल्य महिमावान, दीप्त सूर्य सदृश वे विवेकानन्द हमलोगों के हृदय में सदा विराज करें।

पुरखों की थाती

अर्थाः गृहे निवर्तन्ते श्मशाने पुत्रबान्धवाः।
सुकृतं दुष्कृतञ्चैव गच्छन्तमनुगच्छति।।७४७।।
(महाभारत)

– मनुष्य जब मर्त्यलोक को छोड़कर परलोक की ओर चलता है, तो उसकी धन-सम्पदा उसके घर में ही साथ छोड़ देती है, पुत्र तथा सगे-सम्बन्धी केवल श्मशान तक उसका साथ देते हैं, उसके बाद तो केवल उसके पुण्य-पाप ही उसके साथ यात्रा करते हैं।

असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः।
अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः ।।७४८।।
(महाभारत)

– विद्यार्थी के लिये ईर्ष्या मृत्यु के समान है, बहुत बोलना (दैवी) सम्पदाओं का नाशक है और विद्या के तीन (प्रमुख) शत्रु हैं – सेवा से जी चुराना, पढ़ने-लिखने में जल्दबाजी और आत्मप्रशंसा।

आचारः कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषणम्।
सम्भ्रमः स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम्। ।।७४९।।

– व्यक्ति का आचरण-व्यवहार देखकर उसके कुल का परिचय मिलता है। उसके बोलचाल से उसके देश-प्रदेश का पता लगता है, उसका आदर-सत्कार का भाव देखकर उसके प्रेम का ज्ञान होता है और उसके शरीर को देखकर उसके भोजन का पता चलता है।

विवेकानन्द के ज्वलन्त मन्त्र

हे भारत मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती है। मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ शंकर हैं, मत भूलना कि तुम्हारा विवाह, तुम्हारा धन और तुम्हारा जीवन इन्द्रिय सुख के लिये, अपने व्यक्तिगत सुख के लिये नहीं है, मत भूलना कि तुम जन्म से ही 'माता' की बलिस्वरूप रखे गये हो, मत भूलना कि तुम्हारा समाज उस विराट महामाया की छायामात्र है, मत भूलना कि नीच, अज्ञानी, दरिद्र, चमार और मेहतर तुम्हारा रक्त और तुम्हारे भाई हैं। हे वीर ! साहस का आश्रय लो, गर्व से कहो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, बोलो कि अज्ञानी भारतवासी, निर्धन भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, सब मेरे भाई हैं। तुम कटिमात्र में वस्त्र लपेटकर गर्व से पुकारकर कहो – भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत के देवी-देवता मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरा पालना, मेरे यौवन का उपवन और मेरे वार्धक्य की वाराणसी है। भाई बोलो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है, दिन-रात कहते रहो – 'हे गौरीनाथ ! हे जगदम्बे ! मुझे मनुष्यत्व दो, माँ मेरी दुर्बलता और कापुरुषता दूर कर दो, मुझे मनुष्य बना दो।

मैं चुनौती देता हूँ कि कोई भी व्यक्ति भारत के राष्ट्रीय जीवन का कोई भी ऐसा काल मुझे दिखा दे, जिसमें यहाँ समस्त संसार को हिला देने की क्षमता रखनेवाले आध्यात्मिक महापुरुषों का अभाव हो।

हमारी इस मातृभूमि में इस समय भी धर्म और अध्यात्म विद्या का जो स्रोत बहता है, उसकी बाढ़ समस्त जगत् को आप्लावित कर, राजनीतिक उच्चाभिलाषाओं एवं नवीन सामाजिक संगठनों की चेष्टाओं में प्रायः समाप्तप्राय, अर्धमृत तथा पतनोन्मुखी पाश्चात्य और दूसरी जातियों में नव-जीवन का संचार करेगी। ○○○

सम्पादकीय

भारत से प्रेम करो : स्वामी विवेकानन्द

एक बार जोसेफेन मैक्लाउड ने स्वामी विवेकानन्द से पूछा – स्वामीजी ! मैं आपकी कैसे सर्वाधिक सहायता कर सकती हूँ? तब स्वामीजी ने बड़ा ही सुन्दर और आश्चर्यचकित कर देनेवाला उत्तर दिया था। उन्होंने कहा – 'भारत से प्रेम करो।' इससे हम स्वामीजी की महानता और विराटता का थोड़ा अनुमान लगा सकते हैं। थोड़ा क्यों? क्योंकि हमारी बुद्धि बहुत थोड़ी है। एक सीपी में समुद्र तो समायेगा नहीं। विराट वस्तु को मापने के लिये विराट साधन भी तो चाहिए। स्वामीजी जैसे विराट व्यक्तित्व का आकलन करने की क्षमता हममें कहाँ है, हम थोड़ा-बहुत अनुमान ही लगा सकते हैं।

जब स्वामीजी ने कहा कि भारत से प्रेम करो, तो उनके इन शब्दों में भारत-भारती की विराटता और महानता सनद्ध थी। वे स्वयं भारतमय थे। उन्होंने स्वयं कहा था – 'मैं घनीभूत भारत हूँ।'' तो यदि कोई भारत से प्रेम करता है, तो वह वास्तव में स्वामीजी को ही प्रेम करता है। स्वामीजी भारतीय सभ्यता, भारतीय आचार-विचार, भारतीय कला-संस्कृति, भारत की नदियाँ, गिरि-गह्वर, भारतीय पशु-पक्षी, प्राणी और सर्वश्रेष्ठ भारतवासियों से अपने हृदय के अन्तस्तल से प्रेम करते थे। स्वामीजी के विराट वैश्विक हृदय में भारत के लिये सर्वश्रेष्ठ स्थान था। वे हमेशा सम्पूर्ण विश्व के हित का चिन्तन करते थे और प्रयास करते थे, किन्तु भारत के सर्वांगीण विकास एवं भारतवासियों को समृद्ध एवं प्रसन्न देखने के लिये अपने जीवन को अध्यस्त बना देने को तत्पर थे और अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक यही उन्होंने किया भी।

प्रश्न उठता है कि सार्वभौमिक, सार्वजनीन विराटचेत्ता स्वामीजी भारत के प्रति इतना प्रेम क्यों करते थे? वे धर्म, जाति, वर्ण, देश-काल निरपेक्ष सप्तर्षि थे। तब ऐसा पक्षपात क्यों? तो आइये उनके भारत-प्रेम का कारण और भारत-महिमा के सम्बन्ध में स्वामीजी के मुख से ही सुनते हैं – ''यदि पृथ्वी पर ऐसा कोई देश है, जिसे हम धन्य पुण्य भूमि कह सकते हैं, ... यदि ऐसा कोई देश है, जहाँ मानव-जाति की क्षमा, धैर्य, दया, शुद्धता आदि सद्वृत्तियों का सर्वाधिक विकास हुआ है और यदि ऐसा कोई देश है, जहाँ आध्यात्मिकता तथा सर्वाधिक आत्मान्वेषण का विकास हुआ है, तो वह भूमि भारत ही है।[१]

''राजनीतिक महानता या सामरिक शक्ति की प्राप्ति करना, न कभी भारत का जीवनोद्देश्य रहा है, न अब है और याद रखो ऐसा भविष्य में भी कभी नहीं आयेगा।[२]

''...भारत युगों तक शक्तिशाली बना रहा, तो भी शक्ति उसका उद्देश्य नहीं बना। उसने अपनी शक्ति का उपयोग कभी अपने देश के बाहर किसी पर विजय प्राप्त करने में नहीं किया। वह अपनी सीमाओं से सन्तुष्ट रहा, इसलिये कभी भी किसी से युद्ध करने नहीं गया, उसने कभी भी साम्राज्यवादी गौरव को महत्त्व नहीं दिया। धन और शक्ति कभी भी इस देश के आदर्श नहीं बन सके।''[३]

स्वामीजी के द्वारा भारत-महिमा-गायन के बहुत उदाहरणों में से ये कुछ दृष्टान्त हैं, जो भारत को अन्य देशों से पृथक् उच्च सिंहासन पर विराजमान करते हैं। इसके अतिरिक्त विश्व को सभ्यता-संस्कृति का पाठ पढ़ानेवाला भारत अपने अतीत के गौरव से गौरवान्वित है, जो अन्य किसी देश के पास ऐसी विरासत नहीं है। भारत की विद्या, सुख-समृद्धि सम्पूर्ण विश्व की सेवा हेतु प्राचीन काल से ही है। इसलिये सर्वदा गुणग्राही स्वामीजी ऐसे महान देश के प्रति कृतज्ञता और उसकी महानता को मुक्त-कण्ठ से गायन करते हैं, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं होनी चाहिए और इसके साथ संयुक्त है उनका मातृभूमि प्रेम – **जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि।**

ऐसी जन्मभूमि को पाकर स्वामीजी अपने को धन्य मानते थे और स्वयं भारतमय हो गये थे। वे भारत की कला-संस्कृति आदि सबसे तादात्म्य बोध करते थे। भारत की मिट्टी उन्हें परम पावन लगती थी, जिसमें वे लोट-लोटकर स्वयं को अत्यधिक भाग्यशाली समझते थे। भारत और स्वामीजी एक

थे। वे भारत के अतीत से गौरवान्वित, वर्तमान से दुखी और भविष्य से आशान्वित और आनन्दित होते थे। स्वामीजी भारत के गौरवशाली अतीत से प्रेरणा लेकर वर्तमान को सुखी-सम्पन्न और भविष्य को पुन: गौरवशाली बनाना चाहते थे, इसलिये उन्होंने देश-विदेश का भ्रमण कर भारत की भावी योजना का निर्माण किया और उसे कार्यान्वित करने में अपने जीवन की आहुति दे दी।

भारत-प्राण स्वामी विवेकानन्द की भारतमय झंकृति हम स्वामीजी की प्रिय शिष्या भगिनी निवेदिता की वाणी में पाते हैं। वे लिखती हैं – ''भारत ही स्वामीजी का महानतम भाव था। भारतवर्ष ही उनके हृदय में धड़कता था। भारत ही उनकी धमनियों में प्रवाहित होता था। भारत ही उनका दिवा-स्वप्न था और भारत ही उनकी सनक थी। इतना ही नहीं, वे स्वयं ही भारत बन गये थे। वे भारत की सजीव मूर्ति थे। वे स्वयं ही साक्षात् भारत, उसकी आध्यात्मिकता, उसकी पवित्रता, उसकी मेधा, उसकी शक्ति, उसकी अन्तर्दृष्टि तथा उसकी नियति के प्रतीक बन गये थे।''[४]

इस प्रकार स्वामीजी और भारत की एकत्व प्रतिपादित होती है। तभी तो रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने रोमाँ रोला से कहा था – ''यदि आप भारत को समझना चाहते हैं, तो विवेकानन्द का अध्ययन कीजिए।''

स्वामीजी जब 'भारतवर्ष' बोलते थे, तब मानो उनकी ध्वनि के साथ सम्पूर्ण भारत प्रतिध्वनित होता था, सम्पूर्ण भारत मुखमण्डल से प्रतिभासित हो उठता था। उनके रोम-रोम से भारत स्पन्दित होता था। इस सम्बन्ध में स्वामीजी की पाश्चात्य शिष्या भगिनी क्रिस्टिन के विचार ध्यातव्य हैं। वे कहती हैं – ''मुझे लगता है कि जब हमने पहली बार उनकी उस अद्भुत आवाज में 'भारतवर्ष' शब्द सुना, तभी से हमारे हृदय में भारतवर्ष के प्रति प्रेम प्रकट हुआ। यह बड़ा ही आश्चर्यजनक लगता है कि कैसे पाँच अक्षरों के इस छोटे शब्द में इतना कुछ समा सकता है। उसमें आवेग था, गर्व था, आकुलता थी, विषाद था, वीरता थी, गृह-विरह था तथा सर्वोपरि गहन प्रेम। कोई भी ग्रन्थ किसी में ऐसे भाव उत्पन्न नहीं कर पाता। उनके शब्दों में श्रोताओं के मन में प्रेम संचारित करने की चमत्कारी शक्ति थी। इसके बाद भारत सदा के लिये हमारा मनोवांछित देश बन गया।'' यह था स्वामीजी के भारत शब्दोच्चारण के साथ उससे तादात्म्य और उसका जन-मानस पर प्रभाव।

विश्व की कहीं की भी मानवीय संवेदनाओं की घटनाएँ विराटचेता स्वामीजी के हृदय में स्पन्दित होती रहती थीं, जैसे फिजी का भूकम्प। किन्तु भारत के वर्तमान से वे बहुत दुखी थे और इसको उन्नत करने के प्रयास में अहर्निश निरत थे। स्वामीजी की देश के प्रति वेदना का मार्मिक वर्णन उनके मित्र ब्राह्मबान्धव उपाध्याय ने किया है – ''एक बार कलकत्ता के हेदुआ तालाब के किनारे मेरी विवेकानन्द से भेंट हुई थी। मैंने कहा – 'भाई ! चुपचाप क्यों बैठे हो? चलो, एक बार कोलकाता शहर में वेदान्त का शोर मचाएँ।'... विवेकानन्द ने कातर स्वर में कहा, ''भवानी भाई ! अब मैं बचूँगा नहीं (यह उनके देहावसान के छह महीने पूर्व की बात है)। मैं इस समय अपने मठ के निर्माण में लगा हूँ, मेरे पास समय नहीं है।'' उसी दिन उनका करुणा-विगलित चित्त देखकर मैं समझ गया कि इस व्यक्ति का हृदय वेदनामय, व्यथा से परिपूर्ण है। पर वेदना किसके लिए, व्यथा किसके लिए? – देश के लिए। आर्य ज्ञान, आर्य सभ्यता – सब नष्ट-भ्रष्ट तथा विध्वंश होता जा रहा है; अन्य अनार्य तत्त्व उस सूक्ष्म, उदार, आर्य तत्त्व को पराभूत किए जा रहे हैं और तुम हो कि जागते ही नहीं, व्यथा भी नहीं होती तुम्हें। विवेकानन्द के हृदय में इसकी वेदनामय प्रतिक्रिया हुई थी। वह व्यथा, वह प्रतिक्रिया इतनी गम्भीर थी कि उसने अमेरिका और यूरोप में चेतना जगा दी। उसी व्यथा की बात सोचता हूँ, उसी वेदना पर चिन्तन करता हूँ और स्वयं से पूछता हूँ विवेकानन्द कौन थे? देश के लिए उनकी व्यथा क्या कभी मूर्तिमान हो सकती है? यदि हो सकती हो, तभी विवेकानन्द को समझा जा सकता है। ... स्वामीजी मैं तुम्हारे यौवन का मित्र हूँ। ... तब मैं कहाँ जानता था कि तुम्हारे हृदय में भारत के लिये पीड़ा का ज्वालामुखी सुलग रहा है। आज भी मैं अपनी क्षुद्र शक्ति के साथ तुम्हारे व्रत को पूरा करने में लगा हूँ।''[५] ऐसी वेदना थी भारत के प्रति स्वामीजी की। हमारा कहना यह है कि स्वामीजी पूर्णत: भारतमय थे और भारत की सेवा करना स्वामीजी की सेवा करना ही है। तो क्या आप अब भी प्रेम नहीं करेंगे अपने सर्वश्रेष्ठ प्रिय भारतवर्ष से? ○○○

सन्दर्भ-सूत्र – १. विवेकानन्द साहित्य ५/५, **२.** वही, ५/९, **३.** वही, १०/४, **४.** मेरा भारत, अमर भारत, पृ. १६६, **५.** वही, पृ. १७१.

प्रेम, करुणा, सहानुभूति और क्षमाशीलता की प्रतिमूर्ति : श्रीमाँ सारदा

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

सचिव, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

माँ ! न जाने कितने भावों का उद्दीपन है यह छोटा-सा शब्द – माँ ! कैसा मधुर ! कितना सुन्दर ! खलील जिब्रान कहते हैं – मानवजाति के होठों का सबसे सुन्दर शब्द है – 'माँ' और सबसे सुन्दर पुकार कोई हो, तो वह पुकार है 'मेरी माँ'। यह एक शब्द है, जो आशा और प्रेम से भरा है। एक मधुर और ममता से पूर्ण शब्द जो हृदय की गहराई से आता है। माँ सब कुछ है – शोक में वह हमारा आश्वासन है, दु:ख में वह हमारी आशा है, दुर्बलता में वह हमारी शक्ति है। वह प्रेम, करुणा, सहानुभूति और क्षमाशीलता का स्रोत है।

विश्व की महान विभूतियाँ – संत, साहित्यकार, कलाकार, सम्राट और नेता अपनी महानता का श्रेय अपनी जननी को देते हैं। जॉर्ज हर्बर्ट कहते हैं, प्रत्येक जाति-धर्म, देश और युग में मनुष्य की माता उसे जैसा बनाये, वैसा ही वह होता है। नेपोलियन कहते हैं, ''किसी भी बालक की भावी उन्नति या अवन्नति का आधार उसकी माता पर आधारित है। मैंने कर्तव्यनिष्ठा और धैर्य अपनी माता की गोद से सीखा है।'' अब्राहम लिंकन कहते हैं, ''मैं जो कुछ कर सकता हूँ और जो कुछ हो सकता हूँ, वह मेरी दिव्य माता का प्रसाद है।''

महात्मा गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस, शिवाजी, सर आशुतोष मुखर्जी, श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, विनोबा भावे, हेलेन केलेर, कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी रामतीर्थ, शंकराचार्य आदि सभी की मातृभक्ति और उन पर उनकी माता का प्रभाव सर्वविदित है।

श्रीरामकृष्ण परमहंस तीर्थयात्रा करते वृन्दावन गये, तब उन्हें वह स्थान इतना पसन्द आ गया कि उन्होंने वहीं रह जाने का निर्णय कर लिया। किन्तु बाद में उन्हें अपनी जननी माँ चन्द्रामणि देवी का ध्यान आया – 'मेरे सिवा कोलकाता में उन्हें कौन देखेगा?'' यह विचार आते ही वे तुरन्त कोलकाता की ओर जाने के लिये निकल पड़े। त्यागियों का सम्राट होते हुए भी वे माँ की सेवा के कर्तव्य को न भूल सके।

अमेरिका में व्याख्यान देते समय स्वामी विवेकानन्द जी ने अपनी जननी भुवनेश्वरी देवी के बारे में कहा था – ''वे जगत में मुझे लानेवाली तपस्विनी थीं, जन्म के पहले वर्षों तक अपना शरीर पवित्र रखा, अपने वस्त्र पवित्र रखे, अपने भाव पवित्र रखे। उन्होंने यह सब किया, इसीलिए वे पूजने योग्य हैं।''

एक यहूदी कहावत के अनुसार ''ईश्वर सर्वत्र पहुँच नहीं सकता, इसीलिये उसने माता की सृष्टि की।'' दुर्गासप्तशती में कहा गया है –

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।

''यह जगन्माता देवी सभी जीवों में मातृरूप से विराजमान हैं।'' पैगम्बर हजरत मोहम्मद कहते हैं ''तुम्हारा स्वर्ग तुम्हारी माता के चरणों के नीचे है।'' हमारे शास्त्रों में भी कहा है –

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'

'माता और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान है।' मनुस्मृति के अनुसार –

उपाध्यायान्दशाचार्यं आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते।।

दस उपाध्यायों से बढ़कर एक आचार्य हैं, सौ आचार्यों से बढ़कर एक पिता है और हजार पिताओं से बढ़कर एक माता है।

सांसारिक सम्बन्धों में सबसे अधिक नि:स्वार्थ प्रेम होता है – माता का शिशु के प्रति। माँ के प्रेम में ईश्वर के प्रेम की छाया की अनुभूति होती है। पाश्चात्य देशों में नारी स्वातंत्र्य-आन्दोलन के साथ-साथ ईश्वर को 'माता' के रूप

में भजने का अधिकार प्राप्त करने का आन्दोलन भी आरम्भ हुआ है। ईसाई धर्म में अब तक ईश्वर को पिता (father) के रूप में ही सम्बोधन करने की अनुमति थी, अब ईश्वर को 'माता' (mother) के रूप में सम्बोधन करने की स्वीकृति मिल गई है। हमारी भारतीय संस्कृति में तो वैदिक काल के पूर्व से ही ईश्वर को माता के रूप में भजने की परम्परा है।

यह युग नारी स्वातंत्र्य का, नारी जागरण का है। नारियों-माताओं द्वारा एक नये युग का प्रारम्भ होनेवाला है। इसीलिए इस युग के अवतार श्रीरामकृष्ण देव के जीवन में नारी-सम्मान का, मातृपूजा का विशेष महत्त्व देखने को मिलता है। श्रीरामकृष्ण देव ने विभिन्न धर्मों की, विभिन्न मार्गों की साधना की, परन्तु साधना का प्रारम्भ माँ काली की पूजा से किया। एक नारी भैरवी ब्राह्मणी को गुरु रूप में स्वीकार कर ६४ तन्त्रों की साधना उन्होंने की। अपनी धर्मपत्नी श्रीमाँ सारदा देवी की जगन्माता के रूप में षोडशी पूजा की और अपनी सभी साधनाओं का फल उनके चरणों में समर्पित किया और उनको समस्त जगत की माता के उच्चतम आसन पर विराजमान किया। १८८६ ई. में श्रीरामकृष्ण देव के तिरोधान के बाद ३४ वर्षों तक श्रीमाँ सारदा देवी ने विश्वजननी के रूप में लीला की।

एक बार श्रीमाँ सारदा देवी को किसी भक्त ने पूछा ''माँ, अन्य अवतारों में तो देखने को मिलता है कि पहले शक्ति का तिरोभाव होता है, पर इस समय तो ठाकुर पहले चले गये, ऐसा क्यों हुआ?'' श्रीमाँ ने उत्तर देते हुए कहा, बेटे ठाकुर (श्रीरामकृष्ण देव) संसार में मातृत्व का प्रचार करने के लिए मुझे छोड़ गये हैं।''

कैसी अद्‌भुत थी यह मातृत्व की लीला ! गरीब-अमीर, ऊँच-नीच, पुरुष-स्त्री-आबालवृद्ध, सज्जन-दुर्जन, संन्यासी-गृहस्थ, पापी-पुण्यात्मा सब पर जात-पात के या 'धर्म के भेदभाव' के बिना करुणारूपिणी श्रीमाँ सारदा देवी ने अहैतुक कृपा बरसायी थी, मातृ-स्नेह का वर्षण किया था और आज भी सूक्ष्म रूप से कर रही हैं। इसीलिए तो अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, रूस, जापान, हालैंड, बांगलादेश आदि देशों में से हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी यहूदी, बौद्ध, जैन आदि लाखों नर-नारियाँ श्रीमाँ सारदा देवी के स्नेह-पाश में बँध रहे हैं।

कई लोगों का ऐसा अनुमान है कि अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द और श्रीरामकृष्ण को ही अधिक मानते होंगे। परन्तु कुछ साल पहले अमेरिका के हॉलीवूड के वेदान्त सोसायटी के अध्यक्ष स्वामीजी ने एक बार बात करते समय बताया कि वहाँ अमेरिका में भक्त लोग श्रीमाँ सारदा देवी को अधिक चाहते हैं, क्योंकि वहाँ का जो समाज है, वे ऐसा स्थान खोजते हैं, जहाँ उनको, पापी-तापियों को सहारा-आश्वासन मिले। श्रीमाँ सारदा देवी के ये वचन – ''मैं सज्जनों की भी माँ हूँ, दुर्जनों की भी माँ हूँ।'' ''बालक यदि अपने को कीचड़ से सान ले, तो माता को ही उसे साफ करके गोद में लेना पड़ता है न?'' ये शब्द उनको आकर्षित करते हैं। श्रीमाँ सारदा देवी मानो सभी को आमन्त्रित कर रही हैं। ''आओ, आओ पापी-तापी, दुःखी सब आओ ! मैं तुम्हारी माँ हूँ, कहने की माँ नहीं, मात्र गुरु पत्नी नहीं, किन्तु सच्ची माँ।''

आदि शंकराचार्य 'अपराध-क्षमापन स्तोत्र' में लिखते हैं – '**कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति**' – पुत्र कुपुत्र हो सकता है, परन्तु माता कभी कुमाता नहीं होती।'' श्रीमाँ सारदा देवी का जीवन जैसे इस उक्ति का साक्षात् प्रमाण है।

एक बार बेलूड़ मठ में साधु ब्रह्मचारी गंगा में स्नान कर रहे थे। एक ब्रह्मचारी (नगेन) को इन लोगों ने कहा, ''आज तो महापुरुष महाराज तुम्हें दो पैसे देनेवाले हैं।'' ब्रह्मचारी नगेन घबड़ा गया। महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्दजी) सब बेलूड़ मठ का कार्य सँभालते थे। कोई साधु-ब्रह्मचारी यदि मठ के नियम का ठीक से पालन न करता, तो उसे दो पैसे दे दिये जाते। (गंगा पार करने के लिए नाव में जाने का किराया तब दो पैसे थे।) अर्थात् मठ से निकाल दिया जाता था। ब्रह्मचारी नगेन इतना डर गया कि किसी को भी कहे बिना वस्त्र आदि कुछ भी लिए बिना उसी समय श्रीमाँ सारदा देवी के पास जाने के लिए जयरामबाटी की ओर चल पड़ा। नंगे पाँव करीब ७० मील की दूरी चलकर, थककर वह जब जयरामबाटी पहुँचा, तब उसके मैले कपड़े, बिखरे हुए बाल देखकर पहले तो कोई समझ भी न सका कि यह बेलूड़ मठ से आया होगा। परिचय मिलने पर श्रीमाँ ने उसे वस्त्र दिए, अच्छी तरह खिलाया और स्वामी शिवानन्द को पत्र लिखवाया, ''बेटा तारक, छोटे नगेन ने अपराध किया है, इससे तुम उसे निकाल दोगे, इस डर से पूरा रास्ता चलकर मेरे पास आया है, तो बेटे, माँ तो कभी बेटे का दोष देख नहीं सकती। उसे कुछ कहना नहीं।'' उत्तर मिलने तक उन्होंने नगेन को अपने पास अच्छी तरह रखा। पत्र

का तुरन्त उत्तर आया – ''छोटा नगेन आपके पास आया है, जानकर हमारी चिन्ता दूर हुई है, हम उसे खोजते थे कि कहाँ गया। उसे भेज दीजिए। यहाँ पुजारी का अभाव है। मैं उसे कुछ नहीं कहूँगा।'' पत्र मिलते ही श्रीमाँ ने नगेन को बेलूड़ मठ भेज दिया। मठ में पहुँचते ही स्वामी शिवानन्द ने उसे गले लगा लिया और कहा, ''बेटे तू मेरे विरुद्ध नालिस करने के लिए हाईकोर्ट तक पहुँच गया।''

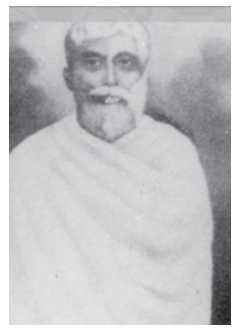
साधु नागमहाशय

जयरामबाटी के पास ही एक गाँव के एक सम्पन्न परिवार के पढ़े-लिखे युवक ने श्रीमाँ से दीक्षा ली थी। उनके पास वह हमेशा आता। उसकी सहायता से गाँव में एक आश्रम भी प्रारम्भ किया गया था, किन्तु दुर्भाग्य से वह अपने निकट की रिश्तेदार एक बाल विधवा के प्रेम में पड़ गया। बदनामी की बातें हवा में उड़ती आयीं, तो कुछ समय में जयरामबाटी के भक्तों ने इस बारे में सुना। क्रोधित होकर उन्होंने श्रीमाँ से आकर कहा कि युवक को अपने पास आने न दें। संतान की कलंक की बात सुनकर श्रीमाँ को बहुत दुख हुआ, पर उन्होंने कहा, ''माँ होकर मैं उसे अपने पास आने से मना कैसे कर सकती हूँ। कठोर शब्द मेरे मुँह से नहीं निकल सकेंगे।'' इससे उस युवक का आना-जाना पहले की तरह जारी रहा।

यह उस समय की बात है, जब श्रीमाँ कलकत्ते में उद्‌बोधन भवन में रहती थीं। वे पूजा के कमरे में थीं। अचानक उन्हें किसी के रोने का स्वर सुनाई दिया। वे बाहर आयीं, तो देखा कि एक युवती रो रही थी। श्रीमाँ ने कहा – ''बेटी अन्दर आ, क्यों रोती हो?'' युवती अधिक जोर से रोने लगी। उसने रोते-रोते कहा, ''माँ, मेरा चरित्र भ्रष्ट हो गया है। इस पवित्र कमरे में प्रवेश करने का भी मुझे अधिकार नहीं।'' श्रीमाँ ने युवती को गले लगा लिया और उसका हाथ पकड़कर प्रेम से कमरे में ले आयीं। उन्होंने युवती के आँसू पोंछते हुए कहा, ''बेटी, अब तुझे पश्चाताप हुआ है। इसलिए तू चिन्ता मत कर। जो हो गया, उसे भूल जा। आज से तेरा नया जन्म हुआ है।''

एक बार एक संन्यासी मठ को छोड़कर चले जा रहे थे। श्रीमाँ के पास से बिदा लेते समय वे रोने लगे। श्रीमाँ भी रोने लगीं। कुछ समय बाद अपने आँचल से आँसू पोंछकर उन्होंने मुँह धोकर आने को कहा। बाद में प्रेम से बोलीं, ''मुझे भूल मत जाना। तुम भूलोगे नहीं। यह मैं जानती हूँ, फिर भी मैं कहती हूँ।'' संन्यासी ने कहा, ''माँ तुम क्या मुझे भूल जाओगी।'' श्रीमाँ ने कहा, ''माँ कभी भी संतान को भूल सकती है? समझना कि मैं हमेशा तुम्हारे पास ही रहूँगी, डरना मत। जब भी कोई आपदा या दुख आए, तो याद करना कि तुम्हारी माँ है।''

श्रीरामकृष्ण देव के गृहस्थ शिष्य साधु नागमहाशय कहते, ''पिता से माँ की दया अधिक है।'' अर्थात् श्रीरामकृष्ण देव से श्रीमाँ सारदा देवी अधिक दयालु हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने भी स्वामी शिवानन्द जी को लिखा था, ''मेरे लिए तो माताजी की कृपा पिता की कृपा से लाखों गुणा अधिक मूल्यवान है। माता की कृपा, माता का आशीर्वाद मेरे लिए सर्वस्व है। मुझे माफ करना, पर माताजी के बारे में मैं कुछ कट्टर हूँ।''

श्रीमाँ सारदा देवी ने कहा था, ''जब भी तुम विपत्ति में पड़ो, तब याद रखो कि तुम्हारी एक माँ है।'' श्रीमाँ के चरणों में हम प्रार्थना करें, ''माँ तुम्हारी हमसे एक ही अपेक्षा है, कि हम तुम्हें याद करें। परन्तु हम संसार के खिलौने खेलने में ऐसे खो जाते हैं कि तुम्हें बिल्कुल भूल जाते हैं। फिर भी तुम हमें मत भूलना और हाथ पकड़कर सन्मार्ग पर ले जाना, जिससे चिरकाल तक तुम्हारी गोद में आश्रय मिले।'' ○○○

कविता

वीर विवेकानन्द महान

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

भारत के तुम अनुपम गौरव, वीर विवेकानन्द महान ।
नवयुग की तुम रचना करते, सकल विश्व को रखकर ध्यान।।
दिव्य लोक से तुम आये प्रभु, सुनकर रामकृष्ण आह्वान।
पृथिवी का दुख ताप मिटाने, देने ब्रह्मतत्त्व का ज्ञान ।।
तुम ही हो प्रभु मुक्तिप्रदाता, हरते सकल जगत अज्ञान ।
पूत चरित तुम पीड़ित सेवक, कृपापूर्ण तुम युग-वरदान।।
सूर्यप्रभासम दीप्तमान तुम, रामकृष्ण के तुम अभिमान ।
ऐसी मुझ पर किरपा कर दो, गाऊँ नित तव महिमा गान।।

वरिष्ठ साधुओं की स्मृतियाँ (६)

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

(स्वामी ब्रह्मेशानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। वे लुसाका और चण्डीगढ़ के अध्यक्ष और वेदान्त केसरी के सम्पादक थे। वे कई वरिष्ठ संन्यासियों के सान्निध्य में आये और उनकी मधुर स्मृतियों को लिपिबद्ध किया है। इसका हिन्दी अनुवाद श्री रामकुमार गौड़, वाराणसी ने किया है। – सं.)

स्वामी सत्स्वरूपानन्द की स्मृतियाँ इन्दौर में

जब मैं स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी से प्रथम बार मिला था, उस समय मैं स्वामी विवेकानन्द का राजयोग पढ़ रहा था। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि किसी गुरु के मार्गदर्शन में ही योगाभ्यास करना चाहिए। अत: मैंने उनसे अनुरोध किया कि वे योगाभ्यास में मेरा मार्गदर्शन करें। इस पर स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने मुझसे पूछा, ''तुम योगाभ्यास क्यों करना चाहते हो?'' मैं ऐसे प्रश्न के लिए तैयार नहीं था और अपने नौसीखिएपन में बोला, ''स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि योगाभ्यास द्वारा आवाज मधुर होती है, स्मरण शक्ति सुधरती है और यहाँ तक कि शरीर भी अच्छा हो जाता है।'' स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने मेरे मूर्खतापूर्ण उत्तर पर बिना हँसे ही कहा, ''किन्तु ये सब तो अन्य तरीकों से भी प्राप्त हो सकते हैं।'' मैं चुप रहा। फिर मेरी असहजता को भाँपकर स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने मुझे हतोत्साहित नहीं किया और कहा कि वे योगाभ्यास में मेरा मार्गदर्शन करेंगे। उन्होंने मुझे अपने अभ्यास को जारी रखने तथा कोई कठिनाई होने पर उनसे पूछने को कहा।

स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी महाराज

एक दिन मैंने उन्हें बताया कि ध्यान करते समय मैं एक ऐसी अवस्था में चला जाता हूँ, जहाँ मैं कुछ नहीं जानता हूँ। मैं राजयोग का अध्ययन कर रहा था और इसीलिए सम्भवत: मैंने सोचा था कि मुझे समाधि हो गई है। स्वामी स्त्स्वरूपानन्द जी ने कहा कि सो तो नहीं गया था? उन्होंने मुझसे न सोने तथा अगली बार सावधान रहने को कहा। उन्होंने कहा कि यदि यह वास्तविक ध्यानावस्था है, तो वह पुन:–पुन: होगी। मैं अगली बार सजग रहा और पता चला कि ऐसी अवस्था मुझे झपकी लगने से हुई थी।

उस समय मैं 'स्वामी विवेकानन्द इन द वेस्ट, न्यू डिस्कवरीज' पुस्तक पढ़ रहा था (तब केवल एक भाग ही था)। एक दिन उन्होंने उस पुस्तक को देखा और अन्तिम अध्याय में एक वाक्य को रेखांकित किया। बाद में, जब मैंने उस अध्याय को पढ़ा, तो पता चला कि वह वाक्य था – ''श्रीरामकृष्ण वेदों की प्रतिमूर्ति थे।''

उन्होंने मुझे निर्वाणषट्कम् और कौपीनपंचकम् मुखस्थ करने को कहा था।

स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी चाहते थे कि बृजमोहन (भैया) मिशन में ब्रह्मचारी के रूप में योगदान करें और इसीलिए पूजा सीखने के लिए उन्हें नागपुर भेजा। इसी बीच भैया के माता–पिता ने उनका विवाह तय कर दिया। जब भैया को यह समाचार भेजा गया, तो वे वापस आ गए और उनका विवाह हो गया। स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी इससे बहुत दुखी और निराश हो गए।

स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी कठोर और दृढ़प्रतिज्ञ थे, इसीलिए वे अधिक जनप्रिय नहीं हो सके। एक बार इन्दौर में मैं उनके साथ बैठा था और हम लोग किसी आध्यात्मिक विषय पर बातें कर रहे थे। तभी एक पड़ोसी वहाँ आए और बोले, ''यदि आपको आपत्ति न हो, तो आपके फोन (Landline) का उपयोग कर सकता हूँ?'' स्वामीजी ने जी उत्तर दिया, निश्चय ही, मुझे आपत्ति है।'' वे सज्जन चले गए।

इन्दौर में लगभग चार वर्ष रहने के बाद स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी हैदराबाद चले गए। जाने से पहले आश्रम

के देवालय को एक भक्त के घर में स्थानान्तरित कर दिया, जहाँ नियमित पूजा जारी रह सके।

किन्तु पत्रों के माध्यम से वे मेरे सम्पर्क में रहे। इसी बीच हम भक्तजनों ने अपने को पुन: संगठित करके आश्रम चालू कर दिया। मैं घर में ही रहा, किन्तु यथासम्भव अधिकाधिक समय आश्रम में बिताता था। हमलोगों ने उस हॉल को पुन: किराए पर ले लिया, जिसमें स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने आश्रम प्रारम्भ किया था और वहाँ तीन ब्रह्मचारी रहने लगे। बाद में, हमलोगों ने उसी भवन को भूमि तल पर स्थानान्तरित करने का निर्णय किया, जो रहने के उद्देश्य से अधिक सुविधाजनक था।

लगभग एक वर्ष बाद स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी यह देखने के लिए इन्दौर आए कि वहाँ कार्य कैसा चल रहा है। हम लोग बिलकुल नौसिखिया थे और संन्यास जीवन तथा आश्रम में रहने के ढंग आदि के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे। अत: स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने आश्रम के लिए कुछ नियम बना दिए। दुर्भाग्यवश, वे नियम अब खो गए, किन्तु उनमें से कुछ जो मुझे याद हैं, इस प्रकार हैं –

यथासम्भव सभी अन्तेवासी सन्ध्या-आरती में अवश्य ही उपस्थित रहेंगे और अन्य भक्तों को उसमें अवश्य उपस्थित रहने के लिए प्रेरित करेंगे। (यद्यपि, वास्तव में मैं अन्तेवासी नहीं था, किन्तु अस्पताल में एक चिकित्सक के रूप में नियुक्त होने पर भी मैंने हमेशा आरती में उपस्थित रहने का प्रयास किया।

आश्रम में रात में कोई महिला नहीं रहेगी।

अन्तेवासीगण आश्रम के कार्यों को चक्रानुक्रम से (अदल-बदल कर) करेंगे।

उनके द्वारा निर्मित अन्तिम नियम –''नियम या कोई नियम नहीं, यदि भावना सच्ची है, तो सब कुछ ठीक से चलेगा।'' (मैं सटीक शब्दों को भूल गया हूँ)

उनके हैदराबाद रहते समय मैं बेंगलुरु जाते समय दो बार हैदराबाद गया था। उस समय हैदराबाद में बेगमपेट हवाई अड्डे की विपरीत दिशा में केवल एक प्राइवेट आश्रम था। एक बार जब मैं उनके साथ एक पेड़ के नीचे बैठा था, तभी एक युवक ने वहाँ आकर कहा कि वह साधु बनना चाहता था। स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने पूछा, ''तुम क्यों साधु बनना चाहते हो? युवक ने कहा कि वह एक उपदेशक, प्रचारक बनना चाहता था। इस पर स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने कहा कि वह चिन्मय मिशन में योगदान कर सकता था, जो प्रचारकों को प्रशिक्षण देता है। उस युवक को क्या करना था, इसकी उसे कुछ सुस्पष्ट धारणा नहीं थी। अत: उसने कहा कि वह सेवा करना चाहता है। तब स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने कहा कि रामकृष्ण मिशन में उसे अस्पतालों के शौचालयों तक को साफ करना पड़ सकता है, क्या वह ऐसा करने में समर्थ है? जब उस युवक ने सहमति दी, तो स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने विनम्रतापूर्वक उसे घर जाकर माता–पिता की सेवा करने की सलाह दी। उन्होंने यहाँ तक कहा कि विवाह करने में कोई हानि नहीं है और उसके लिए विवाह करके माता–पिता की सेवा करना ठीक कार्य होगा। जब वह चला गया, तो मैंने पूछा कि उन्होंने उसे साधु बनने से हतोत्साहित क्यों किया? सत्स्वरूपानन्द जी ने कहा, ''अरे ! वस्तुत: वह साधु नहीं बनना चाहता था, बल्कि विवाह करने के लिए केवल एक संन्यासी की अनुमति चाहता था।''

वाराणसी में

पहली बार बेलूड़ मठ जाते समय मैं वाराणसी आया, जहाँ उस समय स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी रह रहे थे। (तब मैं रायपुर में रहता था) स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने मुझसे एक बहुत असामान्य बात कही, ''मठ के संन्यासियों की कमियों को देखना।'' मैं आश्चर्यचकित रह गया। उन्होंने समझाते हुए बताया, ''तब तुम साधु जीवन में होनेवाली बुराइयों और कमियों को जानोगे और उनसे बचने में समर्थ होगे।''

स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी बाहर से कठोर, किन्तु भीतर से प्रेम से भरे हुए थे। हम पहले ही देख चुके हैं कि भैया से प्रेम के कारण उन्होंने इन्दौर से अपना प्रस्थान निरस्त कर दिया और वहीं रुके रहे। बाद में वाराणसी में भी ऐसी ही बात हुई, जब वे अद्वैत आश्रम, वाराणसी में सेवानिवृत्त होकर रह रहे थे। वहाँ उन्हें कुछ परेशानियाँ थीं और वे शिवाला/सोनारपुरा में स्थित घर में रहना चाहते थे, जो वाराणसी सेवाश्रम की ही सम्पत्ति थी। इस बीच वे लगभग एक वर्ष के लिए प्रयागराज गए। वहाँ से उन्होंने मुझे पत्र भेजा कि मैं सोनारपुरा का घर उनके लिए ठीक कर दूँ। जब मैं योजनाबद्ध ढंग से घर को सुव्यवस्थित कर रहा था, तब मैंने उन्हें पत्र लिखा कि यदि वे शिवाला स्थित घर में बीमार पड़ जाएँगे, तो मैं इतनी दूर सेवाश्रम में रहकर उनकी देखभाल नहीं कर पाऊँगा और इससे मुझे दुगुना कष्ट होगा। स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी इसे तत्काल समझ गए और उन्होंने अपनी योजना निरस्त कर दी।

एक बार वाराणसी में लगातार कई वर्षों तक रहने के पश्चात् मैंने किसी अन्य केन्द्र में जाना चाहा। जब मैंने स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी से इस बारे में बताया, तो वे लगभग निराशा में डूब गए और विनती करते हुए बोले, ''जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक कृपया वाराणसी मत छोड़ो।'' मैंने भी स्थानान्तरण की माँग नहीं की।

स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी बहुत विद्वान थे। फिर भी उन्होंने स्वयं मुझे शास्त्र नहीं पढ़ाया। इसके बजाय उन्होंने मुझे वेदान्त के विद्वान स्वामी धीरेशानन्द जी से शास्त्रों का अध्ययन करने को कहा, क्योंकि स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी चाहते थे कि मैं परम्परागत वेदान्तिक ज्ञान में प्रशिक्षण प्राप्त करूँ। तद्नुसार मैंने श्रद्धेय स्वामी धीरेशानन्द जी से पंचदशी, नैष्कर्म्य सिद्धि और अन्य शास्त्रों का अध्ययन किया।

स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी स्वामी गम्भीरानन्द जी के बैच के थे। उन्होंने, स्वामी गम्भीरानन्द जी और बेलूड़ मठ ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र के प्रथम प्रधानाचार्य स्वामी बोधात्मानन्द जी (भव महाराज) ने एक साथ संन्यास पाया था। स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी तत्कालीन परमाध्यक्ष स्वामी माधवानन्द जी के निजी सचिव भी रहे थे। किन्तु स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी की 'मध्य भारत' में एक केन्द्र स्थापित करने की इच्छा थी, जैसाकि स्वामी विवेकानन्द चाहते थे। इसलिए वे इन्दौर आए थे।

जब वे अद्वैत आश्रम, वाराणसी में वृद्धावस्था में सेवानिवृत्त और अशक्त जीवन बीता रहे थे, तब तत्कालीन परमाध्यक्ष या उपाध्यक्ष स्वामी गम्भीरानन्द जी वाराणसी आए थे। श्रद्धेय स्वामी गम्भीरानन्द जी की नेत्र ज्योति बहुत क्षीण थी और स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी वृद्धिप्राप्त पार्किन्सन रोग के कारण चल–फिर नहीं सकते थे। अत: स्वामी गम्भीरानन्द ने अंधे और लँगड़े की कहानी के रूपक के माध्यम से कहा, ''मैं अन्धा हूँ और आप अचल हैं।''

स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने एक बार कहा था, ''एक बार बेलूड़ मठ के आगन्तुक कक्ष में भजन-कीर्तन हो रहा था। (अब भी उस कक्ष में संन्यासियों और ब्रह्मचारियों द्वारा भजन गाने की परम्परा है।) सम्भवत: स्वामी प्रेमानन्द, ब्रह्मानन्द, शिवानन्द आदि आध्यात्मिक विभूतियाँ वहाँ थीं। एक साधु बाहर जाने के लिए उठे। तब उन्होंने देखा कि माँ काली खिड़की पर खड़ी होकर भजन सुन रही थीं। एक अन्य अवसर पर एक बार स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने एक अन्य विद्वान स्वामी से मगरमच्छ पर सवारी करनेवाली एक विशिष्ट देवी की विशेषताओं के बारे में पूछा। जब उन्हें बताया गया कि ये सभी लक्षण माँ गंगा के हैं, तब उन्होंने कहा कि उन्होंने उस देवी (माँ गंगा) को जल से निकलकर श्रीरामकृष्ण के मन्दिर में प्रणाम करने जाते हुए देखा था। एक बार मैं बातें कर रहा था कि सामूहिक जीवन आदि में रहते हुए ब्रह्मज्ञान होना कठिन है। स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने तीक्ष्ण भाव से कहा, ''क्या तुम सोचते हो कि रामकृष्ण मिशन तुम्हें ब्रह्मज्ञानी बनाने के लिए है? यह तुम्हें उसके लिए अधिकारी साधक बनाने के लिए है।''

जब एक बार मैंने अपने एक साधु भ्राता के व्यंग्यात्मक व्यवहार की शिकायत की, तो स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने कहा कि उसका वैसा ही स्वभाव है और मुझे उसके साथ

सामंजस्य बैठाना चाहिए। इस तरह उन्होंने मुझे जीवन भर के लिए एक मार्गदर्शक सिद्धान्त दे दिया।

स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने एक बार बहुत नाराज होकर कहा था कि सदाचार का जीवन नहीं बिताने वाले और विलास में डूबे दम्भी साधु नरक में जाएँगे।

पूज्य स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी से एक वार्तालाप

सन् १९५६ से १९६० लगभग चार वर्षों तक रहकर इन्दौर के आश्रम की आध्यात्मिक नींव स्थापित कर पूज्य स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी इन्दौर छोड़कर हैदराबाद चले गये थे। वहाँ बेगम पेठ हवाई अड्डे के पास रामकृष्ण मठ नामक एक आश्रम था, जिसकी स्थापना श्रीरामकृष्ण के गृहस्थ शिष्य श्रीरामचन्द्र दत्त के एक शिष्य स्वामी योगानन्द ने की थी। निम्नलिखित अनुवाद उसी आश्रम में उनके साथ ३-१०-६४ को अंग्रेजी में हुए वार्तालाप के कुछ अंशों का है।

कुछ अन्य प्रश्नादि के बाद मैंने अपने भविष्य के बारे में पूछा।

उत्तर : भविष्य का निर्माण व्यक्ति स्वयं करता है।

मैं : इस विषय में मैं पूर्ण निश्चित हूँ, पहले से भी अधिक।

स्वामीजी : कि तुम अविवाहित जीवन व्यतीत करोगे, यही न !

मैं : नहीं ! कि मैं रामकृष्ण आश्रम का साधु बनूँगा।

स्वामीजी : 'हाँ, शायद'।

मैं : यह मनोविज्ञान है। 'शायद'। जो हृदय में, मन में रहता है, वह अनायस मुँह से प्रकट हो जाता है।

स्वामीजी : अनायास प्रकट हुई वाणी हृदय की गहराई से आती है।

मैं चुप रहा। इसके बाद मैंने कहा : ''इसका कारण शायद यह है कि मुझे रामकृष्ण मिशन के बारे में अधिक जानकारी नहीं है। रामकृष्ण मिशन के बारे में मेरी धारणा स्पष्ट नहीं है।

स्वामीजी : इन वर्षों में तुम्हें उसके बारे में जानकारी हो जाना चाहिए था। क्या तुमने स्वामी विवेकानन्द साहित्य (कम्पलिट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द) के आठ खण्डों को पढ़ा है।

मैं : मैंने कुछ पढ़े हैं, चार।

स्वामी जी : 'नहीं।'

मैं : 'हाँ।'

स्वामीजी : पहले जब मैं रोमाँ रोलाँ द्वारा लिखित श्रीरामकृष्ण की जीवनी का पाठ करता था, तब तुम प्रत्येक लाईन पर प्रश्न करते थे। पर तुमने विवेकानन्द साहित्य के विषय में प्रश्न नहीं किया।

मैं : मैं किससे पूछता?

स्वामीजी : ''मुझसे या तुम्हारे गुरुजी से, पत्रों द्वारा।'' मैं चुप रहा।

कुछ देर शान्त रहकर स्वामीजी कहने लगे : ''स्वामी यतीश्वरानन्द जी ने अब लोगों से मिलना और बातचीत करना बन्द कर दिया है। बातचीत करने का तुम्हारा सम्भवत: यही एक मात्र अवसर है। इसका पूरा उपयोग करके अपनी शंकाओं को दूर कर लो। अगर तुम्हारी शंकाएँ दूर नहीं हुईं, तो वे सदा उलझी रहेंगी।

''रामकृष्ण मिशन के साधु और अन्य साधुओं में जमीन-आसमान का अन्तर है। महेश ने भी मिशन में योगदान किया है। उसे इसका अर्थ अगले दो वर्षों में पता चलेगा। इसके लिये निष्ठा आवश्यक है और मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि तुममें भी निष्ठा नहीं है। निष्ठा प्राप्त करने के लिए तीव्र आध्यात्मिक जीवन आवश्यक है। तीव्र आध्यात्मिक जीवन से निष्ठा पैदा होती है।

''मिशन में योगदान करने के पूर्व इन कुछ महीनों या वर्षों में जप, ध्यान, प्रार्थना का तीव्र आध्यात्मिक जीवन जीयो। तब तुम्हें निष्ठा समझ में आयेगी। स्वामी विवेकानन्द ने काशीपुर में जैसा तीव्र साधनामय जीवन जीया था, वैसा जीवन व्यतीत करो।

''तुम्हें उस अनुभूति का आस्वाद मिलना चाहिए – वह भाव कि कुछ भी नहीं हैं, यह जगत भी नहीं है, तुम भी नहीं हो, आत्मा को छोड़ और कुछ भी नहीं है। सबकुछ एक है, जैसे बर्फ का कठोर डला सर्वत्र विद्यमान आत्मा। ओह ! क्या अनुभव है ! उसके बिना जीवन जीने योग्य नहीं है – जीवन का कोई मूल्य नहीं हैं।''

मेरा प्रश्न : ''क्या यह सत्य है कि मिशन में आध्यात्मिक साधना का पर्याप्त अवसर नहीं मिलता? या यों कहें कि मिशन में तीव्र साधना करने की सम्भावना नहीं है?

उत्तर – वह उसके लिए नहीं है।''

मैं चुप रहा।

स्वामीजी : ''उसका उद्देश्य कुछ और है। तीव्र क्रियाशीलता। यह क्रियाशीलता ही आध्यात्मिक प्रगति में सहायक बन जाती है, अगर पहले तुमने तीव्र साधना की हो।

''यह पूर्ण सत्य नहीं है कि तुम्हें आध्यात्मिक विकास का यहाँ अवसर नहीं मिलता। तुम चाहो, तो साधना कर सकते हो। पर अधिकारी वर्ग उसमें बाधाएँ-सी पैदा करते हैं। पर यदि तुम फिर भी लगे रहो और उनका सामना कर सको, तो वे तुम्हें छोड़ देंगे। मठ के एक साधु हैं, जो विभिन्न केन्द्रों में जाते हैं, पर कर्म से अपने को अलग रखते हैं, उनमें नहीं फँसते।

''फिर ऐसे भी लोग हैं, जो तीव्रता से बहुत कर्म करते हैं और साथ ही जिन्होंने उच्च आध्यात्मिकता प्राप्त की है। ऐसे एक एम.बी.बी.एस. डॉक्टर हैं। एक दूसरे साधु एकान्त में रहकर ध्यान-जप में समय व्यतीत करते हैं। जब वे ध्यान से उठकर बाहर आते हैं, तो देखते ही पता चलता है कि उनमें कुछ है। एक बार हमारे स्वामी (?) शुद्धानन्दजी को ध्यान के ठीक बाद एक मीटिंग में योगदान देने के लिए बुलाया गया। ज्योंही वे कमरे में प्रविष्ट हुए कोई भी एक शब्द भी बोल नहीं सका। सब उनकी उपस्थिति मात्र से मानो स्तब्ध हो गये। सभी ने उसका अनुभव किया।

०५-१०-१९६४

मैं : ''क्या मिशन में योगदान देने के बाद सबको पहले दो वर्ष कठिनाई का सामना करना पड़ता है?

स्वामीजी : सभी को नहीं। यह व्यक्ति के स्वभाव और घर की व्यक्तिगत ट्रेनिंग (शिक्षा) पर निर्भर करता है। तुम्हें मिलजुल कर रहना होगा और विभिन्न प्रकार के लोगों के साथ तालमेल स्थापित करना होगा। (have to be accomodative and adjust with all) तुम्हें विनम्र होना होगा और स्वयं को नीचे रखने में भी तैयार होना होगा। चारों ओर से तुम पर आघात होंगे। आघात महान शिक्षक होते हैं।

रामकृष्ण आश्रम, इन्दौर के अन्तेवासियों के लिए स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी द्वारा बनाये गये नियम –

१. आश्रमवासी या अन्तेवासी वह है, जो श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के द्वारा बताये धर्म तथा उनके उपदेशों के अनुसार जीवन यापन करेगा। उसके जीवन का मुख्य और एकमात्र लक्ष्य ईश्वर साक्षात्कार होगा।

२. वह अविवाहित ब्रह्मचारी का जीवन यापन करेगा।

३. प्रात:काल ५.३० बजे सोकर उठेगा और मंगल आरती में सम्मिलित होगा।

४. उसके बाद व्यायाम और ध्यान करेगा।

५. सब आश्रमवासी साथ में ७.४५-८.०० बजे नाश्ता करेंगे।

६. इसके बाद वे लोग आश्रम का कोई कार्य जैसे पूजा, कमरा साफ करना आदि करेंगे, ये कार्य वे बारी-बारी से करेंगे।

७. अपने व्यावसायिक कामों पर जाने पर बाहर जानेवाला अन्तिम व्यक्ति ठीक से देखेगा कि दरवाजा अच्छी तरह बंद किया गया है।

८. शाम को लौटकर पुन: आश्रम का कार्य करें।

९. संध्या आरती में योगदान दें।

१०. रात को १० बजे लाईट बंद कर दी जायेगी।

○○○

कविता

उठो, जागो ! दुर्बलता त्यागो !!

मोहन सिंह मनराल, अलमोड़ा

उठो जागो, दुर्बलता त्यागो
भाग्य-विधाता हो तुम अपने, जीवन से मत भागो ।
उठो जागो, दुर्बलता त्यागो ।।
जो भी आए सामने सामना करो,
न किसी सुख की कामना करो,
लक्ष्य बड़ा तो विघ्न बड़े हैं, किसी से कुछ मत माँगो।।
उठो जागो, दुर्बलता त्यागो ।।
प्रलोभन खड़े सामने नीचे गिरा रहे हों,
स्वजन देख तुम्हारी धुन मुँह फिरा रहे हों,
अपने ही ऊपर कर विश्वास, किसी ओर न ताको ।।
उठो जागो, दुर्बलता त्यागो।।
कोई साथ नहीं देगा एकाकी ही लड़ते जाना है,
लक्ष्य मिले चाहे न मिले, इस पथ में प्राण लुटाना है,
मरकर भी जिन्दा हैं, जो उनके चरणों से लागो ।।
उठो जागो, दुर्बलता त्यागो ।।

आपसे बड़ा बलिदानी पुरुष क्या कोई हो सकता है?

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

एक बार औरंगजेब कश्मीर के ब्राह्मण वर्ग को धर्म परिवर्तन के लिए विवश कर रहा था। जो लोग धर्म परिवर्तन करने से मना कर रहे थे उन पर औरंगजेब अत्याचार करने लगा। उसके अत्याचार से पीड़ित तथा दुखी कश्मीरी ब्राह्मण सिखों के नौवें गुरु तेगबहादूर के पास गए और उन्होंने उनसे अत्याचार से मुक्ति दिलाने की विनती की। यह विनती सुनकर गुरु तेगबहादूर चिन्तित हुए। छोटे पुत्र गोविन्द ने अपने पिता को इस प्रकार चिन्तित कभी नहीं देखा था। गोविन्द ने अपने पिता से इस निराशा और चिन्ता का कारण पूछा। गुरु तेगबहादूर ने उत्तर दिया, 'किसी एक महान् पुरुष के बलिदान के सिवाय अत्याचार से बचाने का कोई अन्य मार्ग नहीं है।' यह सुनकर गोविन्द ने तुरन्त उत्तर दिया, ***'पिताजी, आपके जैसा और आपसे बड़ा गौरवशाली बलिदानी पुरुष क्या कोई हो सकता है?'*** बालक गोविन्द के इस निर्भीक विचार को सुनकर गुरु तेगबहादूर ने स्वयं को धन्य एवं गौरवान्वित अनुभव किया। गोविन्द की बात को सुनकर उनका मान और भी बढ़ गया और उन्होंने कश्मीरी ब्रह्मणों से कहा, 'औरंगजेब से जाकर कहो कि यदि गुरु तेगबहादुर धर्मांतरण करेंगे, तो सारे ब्रह्मण धर्म परिवर्तन करने के लिए तैयार हैं। अपने इस वचन को पूरा करने के लिए गुरु तेगबहादूर दिल्ली दरबार गए तथा दरबार में इस्लाम धर्म स्वीकार करने से मना करने पर औरंगजेब ने उनका सिर काट डाला। गुरु तेगबहादूर ने दूसरों को अत्याचार से मुक्ति दिलाने के लिए अपना बलिदान देकर एक महान इतिहास रच डाला। इस प्रकार हम देखते हैं कि गोविन्द सिंह ने ९ वर्ष की आयु में एक पुत्र के रूप में भी अपने पिता को ब्रह्मणों की रक्षा तथा बलिदान देने के लिए प्रेरित किया। पिता के इस बलिदान से गोविन्द सिंह को त्याग और बलिदान की एक नयी प्रेरणा मिली।

गुरु गोविन्द सिंह का बचपन का नाम गोविन्द राय था। उनका जन्म २२ दिसम्बर, १६६६ में बिहार के पटना नगर में हुआ। गुरु तेगबहादूर उनके पिता और माता गुजरी देवी थीं। बचपन के पहले चार वर्ष पटना में बिताने के बाद उनका परिवार सन् १६७० में पंजाब में स्थानान्तरित हुआ।

एक योद्धा होने पर भी उन्होंने अपने हर एक तीर पर एक तोला सोना लगवाया था। जब उनसे किसी ने पूछा कि आप ऐसा क्यों कर रहे हो, उनका उत्तर था कि मेरा कोई शत्रु नहीं है, मेरी लड़ाई तो अत्याचार के विरुद्ध है, इसलिए इन तीरों से अगर कोई घायल हो जाए तो वे इस सोने से अपना उपचार कराएँ और अगर उनकी मृत्यु हो गई तो उससे उनका अन्तिम संस्कार हो सके।

राष्ट्रीय धरोहर, अस्मिता तथा जीवन मूल्यों की रक्षा के लिए गुरु गोविन्द सिंह ने सन् १६९९ में खालसा पंथ का सृजन किया। एक बार गुरु गोविन्द ने सिख समुदाय की सभा में लोगों से पूछा, तुम में से कोई ऐसा है, जो अपना सिर बलिदान दे सकता है? उसी क्षण एक व्यक्ति आगे आया और गुरु गोविन्द उसे तम्बु के अन्दर ले गए, उसके बाद गुरुजी खून से लथपथ तलवार के साथ अकेले ही वापस आए। गुरु गोविन्द राय ने इस प्रकार लगातार एक एक करके अन्य व्यक्तियों से वही बात पूछी और सभी को एक एक करके तम्बु के अन्दर ले गए और खून से सनी तलवार के साथ अकेले ही वापस आए। पाँचवाँ व्यक्ति गुरु के साथ तम्बु के अन्दर गया और कुछ समय के बाद सभी पाँच व्यक्ति गुरु के साथ जीवित वापस लौटे और उन्हें पंज प्यारे का नाम दिया अर्थात् खालसे का प्रथम नाम। उसके बाद एक दुधारी तलवार से चीनी और जल को एक कटोरे में घोलकर अमृत का पान कराया और स्वयं को छठवें खालसे का नाम दिया। अब उनका नाम गुरु गोविन्द राय से गुरु गोविन्द सिंह हो गया। उन्होंने पाँच ककार – केश, कंघा, कड़ा, किरपान, कच्चेरा को धारण करने का आदेश दिया। गुरु गोविन्द सिंह सिखों के दसवें एवं अन्तिम गुरु थे। उन्होंने ही उसके बाद गुरु ग्रन्थ साहिब को गुरु के रूप में सुशोभित किया।

'सवा लाख से एक लड़ाऊं, चिड़ियों से मैं बाज लड़ाऊं, तभी गोविन्द सिंह नाम कहाऊं' उनकी इस उक्ति से यह विदित होता है कि उनका व्यक्तित्व कुशल नेतृत्व, त्याग और बलिदान की पराकाष्ठा से आदर्श की स्थापना की प्रेरणा देने वाला था।

अद्वितीय वीरता, निष्ठा, दृढ़ संकल्प, ओजस्वी, ज्ञान की मूर्ति, वैराग्य, त्याग तथा बलिदान से युक्त उनके व्यक्तित्व के बारे में स्वामी विवेकानन्द ने कहा, 'ऐसे ही महान् पुरुष के आदर्श हमारे सामने होने चाहिए।' ○○○

कन्याकुमारी के शिलाखण्ड पर स्वामी विवेकानन्द

स्वामी तन्निष्ठानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

(गतांक से आगे)

स्मारक की स्थापत्य-कला : कन्याकुमारी में विद्यमान यह स्मारक भारतीय स्थापत्य कला महान और अद्भुत है। वास्तुशास्त्र का एक विलक्षण आविष्कार है। भारत के श्रेष्ठ स्थापत्य कला के अद्भुत स्थानों से लिए हुए नमूनों का यह एक सुन्दर संगम है। यह स्थान तीन सागरों का संगम है और यह दुर्लभ एकता का प्रतीक है। प्राकृतिक सौंदर्य से ओतप्रोत यह स्थान बहुत ही मनोरम है। लहरों से घिरे इस करीब ४ एकड़ के शिलाखण्ड तक पहुँचना भी एक अलग अनुभव है। यह शिलाखण्ड समुद्र सतह से ५५ फीट उँचाई पर स्थित है। यह स्मारक तीन विभागों में बँटा है – १. देवी पार्वती की तपस्या भूमि में अवस्थित उनके पदचिह्न पर बना **श्रीपाद मण्डप** २. **विवेकानन्द मण्डप** ३. **ध्यान मण्डप**. शिलाखण्ड के निचले हिस्से के समतल भाग में श्रीपाद मण्डप स्थित है और शिलाखण्ड के उपरी हिस्से के समतल भाग में विवेकानन्द मण्डप स्थित है। विवेकानन्द मण्डप के पिछले भाग में निचले हिस्से में ध्यान मण्डप स्थित है।

इस स्मारक में ऊँचाई पर **विवेकानन्द मण्डप** (१८१X५६फुट) है। जिसमें **सभा मण्डप** (१३०X५६X२०फुट) है। सभा मण्डप के अंदर करीब पाँच फुट ऊँचे चबूतरे पर **स्वामी विवेकानन्द की परिव्राजक रूप की ७ फुट ४ इंच की काँस्य मूर्ति** है। इसे बम्बई के जे.जे.स्कूल ऑफ आर्ट के प्राध्यापक एन.एल.सोनवडेकर ने बनाया है। यह मूर्ति इतनी प्रभावशाली है कि इसमें स्वामीजी का व्यक्तित्व एकदम सजीव प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि मानो स्वामीजी २१८ फुट दूर स्थित श्रीपाद

चिह्न की ओर देख रहे हैं। स्वामीजी के परिव्राजक रूप की मूर्ति स्थापित करने के पीछे भाव यह था कि अब देश सेवा के लिए क्रियाशील होना पड़ेगा। सभा मण्डप के भव्य द्वार से भीतर प्रवेश करने पर दोनों ओर बम्बई के सुप्रसिद्ध चित्रकार एस.एम.पण्डित द्वारा चित्रित भगवान श्रीरामकृष्ण तथा माँ सारदा देवी के चित्र लगे हैं। उन्होंने ही स्वामीजी का परिव्राजक रूप का चित्र बनाया, जिसके आधार पर स्वामीजी की मूर्ति बनाई गयी।

यही चित्र आज सर्वत्र लोकप्रिय हुआ है। उन्होंने आगे चलकर अनेक चित्र बनाये हैं जैसे कि देवी पार्वती कन्याकुमारी रूप में एक पैर पर खड़े होकर उसी शिलाखण्ड पर तपस्या करते हुए। लाल ग्रेनाईट से निर्मित सभा मण्डप पर करीब ६६ फुट ऊँचा मुख्य शिखर है। इस शिखर के चारों ओर चार तथा प्रवेश द्वार पर दो ऐसे कुल छह छोटे शिखर हैं। इन शिखरों को **बेलूड़ स्थित श्रीरामकृष्ण मन्दिर** के शिखरों जैसा बनाया गया है। इन पत्थरों को आसपास की खदानों से लाकर समुद्र किनारे उन पर नक्काशी तथा खुदाई का कार्य किया जाता था। तराशे हुए इन पत्थरों को नौका से शिलाखण्ड पर ले जाया जाता था। यह एक बड़ा ही कठिन कार्य था।

सभा मण्डप की पिछली ओर नीचे **ध्यान मण्डप** (४०x५८x१४फुट) है, जिसमें एक विशाल **प्रणव प्रतिमा** लगी है। उसके सामने बैठकर ध्यान किया जा सकता है। स्वामीजी का ऐसा कहना है कि ओंकार को स्वीकार सभी लोग करते हैं। विविध मतों के लोग यहाँ थोड़े समय ध्यान में बितायें, यह इस ध्यान मण्डप का उद्देश्य है। इस मण्डप के लिए नीले ग्रेनाईट का उपयोग किया गया है। मण्डप का फर्श लाल ग्रेनाईट का है। विवेकानन्द मण्डप का मुख्य द्वार अत्यन्त सुन्दर है। इसकी वास्तुकला अजंता-एलोरा की गुफाओं के प्रस्तर शिल्पों से ली गयी है।

विवेकानन्द मण्डप के सामने निचली सतह पर जहाँ देवी **पार्वती** ने एक पैर पर खडे होकर तपस्या की थी वहाँ अंकित उनके पदचिह्न पर **श्रीपाद मण्डप** (७२x७२फुट) मन्दिर जैसा बना है। इस वास्तु में चोल कालीन शैली की छाप दिखती है। मण्डप में तीन परिक्रमा मार्ग हैं। इस मण्डप के लिए नीले ग्रेनाईट का उपयोग किया गया है। एक बार कन्याकुमारी मन्दिर व्यवस्थापन द्वारा शिलाखण्ड पर स्थित श्रीपाद की पूजा तथा अभिषेक किया गया था।

किनारे से करीब १६०० फुट दूरी पर स्थित शिलाखण्ड पर यातायात के लिए नौका की व्यवस्था भी की गयी है। तमिलनाडु सरकार ने समुद्रतट तथा शिलाखण्ड पर नौका यातायात के लिए घाट बाँध दिये हैं। शिलाखण्ड पर दो हेलीपॅड भी है। वहाँ वर्षा का पानी टंकियों में जमा कर उसे उपयोग में लाया जाता है। शिलाखण्ड पर विद्युत व्यवस्था के लिए समुद्र से होकर एक केबल डाला गया है।

इस वास्तु के स्थपति (वास्तुविद) पारम्परिक स्थापत्य कला में कुशल तामिलनाडु के रामनाद जिले के देवकोट्टाई के जगप्रसिद्ध **श्री.एस.के.आचारी** थे। वे ऋषि विश्वकर्मा के वंशज कहलाते हैं। इस दिव्य वास्तु का निर्माण करते समय स्थानीय स्थापत्य कला को, विशेषकर चोल कालीन स्थापत्यकला को ध्यान में रखा गया। वास्तु के लिए पत्थर आसपास के खदानों से लाये गये। लगभग छह वर्ष तक औसतन ६५० श्रमिक प्रतिदिन पत्थर के मूर्ति-शिल्प, पॉलिशिंग, भवन-निर्माण आदि कार्य कर रहे थे। यह एक

श्री.एस.के.आचारी

ऐसा स्मारक है, जिसमें हमारे देश की पारम्परिक वास्तुकला की विभिन्न शैलियों का समन्वय है।

भव्य विवेकानन्द शिला स्मारक का भव्य लोकार्पण : जब स्मारक इतना भव्य है, तब उसका लोकार्पण भी उतना ही भव्य होना चाहिए। कन्याकुमारी तब छोटा-सा गाँव था। दो महीने चलनेवाले इस समारोह के लिए सारे विश्व से करीब ५००० लोग प्रतिदिन तथा कुल मिलाकर ३ लाख लोग

स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज

पधारेंगे ऐसा अनुमान था। अतिथियों के निवास हेतु समुद्र तट पर व्यवस्था की गयी थी। वह अस्थायी व्यवस्था आज भी उपयोगी है। इस कार्य के लिए समिति ने पहले से ही बहुत-सी जमीन (विवेकानन्दपुरम्) क्रय कर रखी थी। इस उपलक्ष्य में भारतीय रेल ने आगन्तुकों के लिए रेल किराये में छूट भी दी थी। २१ अगस्त, १९७० को श्रीपाद मण्डप की स्थापना की गयी।

२ सितम्बर, १९७० भाद्रपद शुक्ल द्वितीया (स्वामीजी के ११ सितम्बर, १८९३ के शिकागो व्याख्यान की ७७वीं वर्षगाँठ) को प्रात: इस वास्तु की पारम्परिक पद्धति से प्रतिष्ठा तथा होम की पूर्णाहुति रामकृष्ण संघ के तत्कालीन **अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज** के करकमलों द्वारा दी गयी। यह कार्यक्रम विधिवत् प्रात: सात बजे के पहले ही पूर्ण हो गया। इस अवसर पर रामकृष्ण संघ के अनेक वरिष्ठ संन्यासी, तपोवन के स्वामी चिद्भवानन्द, चिन्मय मिशन के स्वामी चिन्मयानन्द और भारत तथा सम्पूर्ण विश्व से पधारे अनेक गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। उसी दिन कुछ समय बाद भारत के **तत्कालीन महामहिम राष्ट्रपति श्री.व्ही.व्ही. गिरी** ने उस स्मारक का लोकार्पण परम्परागत नाद-स्वर संगीत तथा वैदिक मन्त्रपाठ के बीच पुरी, द्वारका, बद्रीनाथ, रामेश्वरम् तथा कन्याकुमारी के मन्दिरों से विशेष रूप से लाये हुए चन्दन का तिलक द्वार पर लगाकर किया। स्वामीजी की मूर्ति को नमन कर उन्होंने दीप प्रज्वलन किया। इस उपलक्ष्य में करीब दस बजे समुद्र तट पर कन्याकुमारी मन्दिर के पीछे आयोजित जनसभा में विवेकानन्द शिलास्मारक के संगठन-सचिव ***श्री एकनाथ जी रानाडे*** ने कहा, 'यह स्वामीजी का स्मारक भारत में महान व्यक्तियों के याद में बना केवल एक स्मारक नहीं है, अपितु यह स्मारक स्वामीजी के जीवन से इस प्रकार जुड़ा है, जिस प्रकार भगवान बुद्ध के जीवन से गया का बोधिवृक्ष ! इसी स्थान पर उन्हें गंभीर ध्यान में विदेश जाकर भारत के सार्वजनीन धर्म का संदेश सारे विश्व को देने तथा भारतमाता के पुनरुत्थान तथा पुनर्निर्माण का दिव्य आदेश मिला था, ताकि भारतमाता दैवी-योजना के अन्तर्गत विश्व को दिशा देने का नियत कार्य कर सकें।' इस अवसर पर अपने आशीर्वचन में स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज ने कहा था, 'हालाँकि स्वामी विवेकानन्द भलीभाँति जानते थे कि भारतभूमि पर आध्यात्मिक विचारों का कैसा प्रभाव है, पर वे भारतीय जनसाधारण की दीन अवस्था, उनकी गरीबी और उनकी अशिक्षा भूले नहीं थे। भारत का यदि पुनरुत्थान करना है, तो जनसाधारण की भौतिक प्रगति करनी होगी तथा उन्हें उचित शिक्षा देनी होगी। ... भारत के पतन का यह भी एक कारण है कि उसने अपने आपको अन्य देशों से अलग रखा और उसके पास जो जीवनदायी सत्य है, उसे दूसरों को नहीं दिया। जिस दिन उसने संकीर्णता को अपनाया उसी दिन से उसका पतन आरम्भ हो गया। पर वेदान्त के व्यापक प्रचार और प्रसार से केवल भारत ही नहीं, अपितु सम्पपूर्ण जगत लाभान्वित होगा। ... स्वामीजी

राष्ट्रपति श्री.व्ही.व्ही.गिरी

जब इस शिलाखण्ड पर से ध्यान करके उठे, तब उनके पास अपने जीवन के कार्य की धारणा स्पष्ट हुई – भारतमाता का पुनरुत्थान तथा विश्व मानवता का पुनर्निर्माण ! इसीलिए इस शिलाखण्ड का भारत के लिए ऐतिहासिक महत्त्व है

और इसीलिए भारतमाता के इस महान सपूत की याद में यहाँ स्मारक होना आवश्यक था। जगन्माता की कृपा का वर्षण हम सब पर होता रहे और उनकी असीम कृपा से यह स्थान स्वामीजी जो संदेश हमारे लिए तथा सारे विश्व के लिए विरासत में छोड़ गये हैं, उसके प्रचार और प्रसार का सक्रिय केन्द्र बने।'

यह समारोह दो महीनों तक मनाया गया था, ताकि पूरे भारत के लोग इसमें भाग ले सकें। १६ सितम्बर, १९७० को भारत की **तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी** ने भी शिलाखण्ड पर जाकर स्वामीजी के चरणों में नतमस्तक होकर श्रद्धांजलि अर्पित की। रामकृष्ण मठ के स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज को भी इस अवसर पर विशेष रूप से निमन्त्रित किया गया था। समुद्र तट पर लौटकर वे स्वामीजी के जीवन तथा कार्य पर आधारित 'उठो और जागो' नामक चित्रप्रदर्शनी देखने गये, जिसे कलकत्ता के रघुनाथ गोस्वामी ने बनाया था। समुद्र तट पर आयोजित जनसभा में प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने कहा, 'स्वामीजी की दिव्यवाणी आज और भी अधिक प्रासंगिक है। न केवल लोगों के भौतिक दारिद्र्य को दूर करना आवश्यक है, बल्कि आध्यात्मिक दारिद्र्य को भी दूर करने के लिए ठोस कदम उठाने होंगे।...' कन्याकुमारी से लौटते समय उन्होंने अभ्यागत पुस्तिका में लिखा, 'स्वामी विवेकानन्द के विचारों में श्रद्धा तथा विश्वास रखनेवाले हजारों की इच्छा कैसे फलीभूत होती है, यह कन्याकुमारी

स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज, श्रीमती इन्दिरा गाँधी तथा अन्य गणमान्य व्यक्ति

में देखकर मैं प्रभावित हुई हूँ। यहाँ आनेवाले प्रत्येक को यह स्मारक स्वामीजी के कालातीत तथा महान उपदेशों के अनुरूप जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देगा। इस कार्य के दूसरे चरण में स्वामीजी के उच्च आदर्शों को कार्यान्वित करने के लिए समर्पित युवाओं के एक संघ का गठन करना, यह भी एक महत्त्वपूर्ण बात है। इससे स्वामीजी के सेवाधर्म को व्यावहारिकता प्राप्त होगी।' इस कार्यक्रम के ***अध्यक्ष स्वामी रंगनाथानन्द जी*** ने कन्याकुमारी को भारत का नया प्रतीक बताते हुए कहा, 'सदियों से देवतात्मा हिमालय भारत का प्रतीक हुआ करता था। वह हमारे लिए ध्यान और अन्तर्दृष्टि का द्योतक था। ... पर आज हमें नया प्रतीक मिला है और वह है कन्याकुमारी! और यह कन्याकुमारी स्वामीजी को अभिप्रेत व्यावहारिक वेदान्त के आदर्शों का प्रतिनिधित्व करती है।'

इस समारोह का समापन ३१ अक्तूबर, १९७० को भारत के ***तत्कालीन उपराष्ट्रपति श्री.जी.एस.पाठक*** द्वारा 'विश्व की संस्कृति तथा विचारधारा में भारत का योगदान' इस विषय पर करीब ८०० पृष्ठवाले, ६९ लेख तथा अनेक फोटो तथा चित्र की विशाल तथा विशेष स्मरणिका का विमोचन कर हुआ। इस तरह स्मारक का पहला चरण पूर्ण हुआ।

उपराष्ट्रपति श्री.जी.एस.पाठक

कार्य करते समय और भारत के गणमान्य व्यक्तियों से चर्चा करने के बाद एकनाथ जी का विचार पक्का हुआ कि इस तरह के कार्य करने के लिए गैर-संन्यासियों का एक संगठन आवश्यक है। वहीं से ही उनके मन में आज के **'विवेकानन्द केन्द्र'** का उदय हुआ। इसी प्रकार पहले चरण का कार्य करते समय दूसरे चरण की रूपरेखा तैयार होती गयी।

विवेकानन्द केन्द्र : ७ जनवरी, १९७२ को दूसरे चरण का शुभारम्भ 'विवेकानन्द केन्द्र' नामक सेवाभावी संस्था की स्थापना से हुआ। इसका मुख्यालय कन्याकुमारी में है। यह संस्था रामकृष्ण मिशन के सेवादर्श पर कार्य करेगी और गैर-संन्यासी समर्पित कार्यकर्ताओं द्वारा चलाई जायेगी। इस संस्था में समर्पित युवक तथा युवतियों को प्रशिक्षण दिया

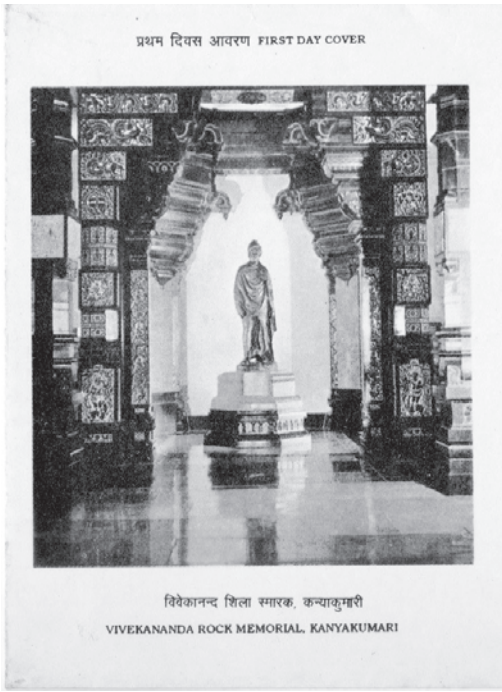

जाता है, जिससे ये भारत के सुदूर पिछड़े क्षेत्रों में जाकर स्थानीय कार्यकर्ताओं के साथ मिलकर, वहाँ के लोगों के लिए आध्यात्मिक तथा शिक्षा, ग्रामीण विकास, सांस्कृतिक अनुसंधान आदि सामाजिक उन्नति के लिए कार्य कर सकें। अध्यात्म प्रेरित मानवता की सेवा ही इस संस्था का एक मात्र उद्देश्य है। व्यक्ति-निर्माण एवं राष्ट्र-पुनरुत्थान इस दोहरे हेतु से विवेकानन्द केन्द्र की स्थापना हुई। शिक्षार्थी, सेवाव्रती और वानप्रस्थी कार्यकर्ताओं के लिए यहाँ प्रशिक्षण की व्यवस्था है। यह संस्था ही इस शिला-स्मारक की देखभाल करती है। समुद्र तट पर भक्तों के आवास की उत्तम व्यवस्था की गयी है। १ अक्तूबर, १९७३ को स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज के करकमलों द्वारा विवेकानन्द लॉज का उद्घाटन हुआ। आज विवेकानन्द केन्द्र की सारे विश्व में लगभग २४५ शाखाएँ नियमित रूप से कार्य कर रही हैं। यह संस्था भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं तथा स्वामी विवेकानन्द के

जीवन तथा संदेश पर करीब १७ भाषाओं में पत्रिकायें तथा पुस्तकें प्रकाशित करती है। ६ सितम्बर, १९८६ (स्वामीजी के शिकागो भाषण की ९३वीं वर्षगाँठ पर) विवेकानन्दपुरम् में **स्वामीजी की हाथ में कमण्डलु लिये *परिव्राजक रूप की काँस्य मूर्ति*** का अनावरण स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज के करकमलों द्वारा किया गया। इस मूर्ति को मुम्बई के **श्री.एस.एस.अत्रे** ने बनाया था। १९९६ में भारतीय डाक विभाग ने विवेकानन्द शिलास्मारक पर डाक टिकट के साथ प्रथम दिवस आवरण जारी किया।

स्वामी विवेकानन्द ने इस शिलाखण्ड पर भारत माता का ध्यान और उनके पुनरुत्थान के चिन्तन में तीन दिन बिताये, उस स्थान पर आज मनोहारी शिल्प-स्मारक निर्माण हुआ है। जैसे इस शिलाखण्ड पर पहुँचना स्वामीजी के लिए कठिन हो गया था, वैसे ही उस स्थान पर स्वामीजी की स्मृति में वहाँ स्मारक बनाने में बहुत-सी कठिनाईयाँ आई। उसमें न केवल प्राकृतिक कठिनाईयाँ आईं, बल्कि प्रशासकीय, सामाजिक तथा आर्थिक कठिनाईयों का सामना करने पर ही यह मनोहारी स्मारक तैयार हो सका है। यह शिला-स्मारक वहाँ जानेवालों को भारतमाता के लिए कुछ कार्य करने की प्रेरणा देता है। ○○○ **(समाप्त)**

सन्दर्भ ग्रन्थ : **१.** दी लाईफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द बाय हिज इस्टर्न अॅण्ड वेस्टर्न डिसायपल्स (अंग्रेजी) खण्ड-१ पृष्ठ-३३९-३४५, **२.** युगनायक विवेकानन्द (हिन्दी) खण्ड-१ लेखक-स्वामी गम्भीरानन्द पृष्ठ-३३०-३३३, **३.** विवेकानन्द : एक जीवनी (हिन्दी) लेखक- स्वामी निखिलानन्द पृष्ठ-१०२-१०४, **४.** अ कॉम्प्रेहन्सिव्ह बायोग्राफी ऑफ स्वामी विवेकानन्द (अंग्रेजी) लेखक- श्री शैलेन्द्रनाथ धर खण्ड-१ पृष्ठ-४८२-४८८, **५.** अतीतेर स्मृति : स्वामी विरजानन्द ओ समसामायिक स्मृतिकथा (बंगाली) लेखक - स्वामी श्रद्धानन्द पृष्ठ-२०७, **६.** अ पिलग्रिमेज टू कन्याकुमारी अॅण्ड रामेश्वरम् (अंग्रेजी) लेखक - स्वामी आत्मश्रद्धानन्द, **७.** स्वामी विवेकानन्द (बंगाली) खण्ड-१ लेखक-प्रमथनाथ बसु पृष्ठ-३३६-३३७ (कुमारी-पूजा), **८.** प्रबुद्ध भारत (अंग्रेजी मासिक पत्रिका) सितम्बर-१९५३ पृष्ठ-३८५ लेख-मेमरिज ऑफ स्वामी विवेकानन्द लेखक - के.एस.रामस्वामी शास्त्री, **९.** आलासिंगा पेरुमल अॅन इलस्ट्रियस डिसायपल ऑफ स्वामी विवेकानन्द (अंग्रेजी) लेखक – स्वामी सुनिर्मलानन्द पृष्ठ-६७-६८, **१०.** दी टेल ऑफ विवेकानन्द रॉक मेमोरियल कन्याकुमारी (अंग्रेजी) प्रकाशक – विवेकानन्द रॉक मेमोरियल कमेटी, मद्रास, **११.** विवेकानन्द शिला स्मारक एक भारत विजयी भारत पुस्तिका प्रकाशक – विवेकानन्द केन्द्र कन्याकुमारी, **१२.** कथा विवेकानन्द शिला स्मारकाची (मराठी) लेखक - एकनाथ रानडे, **१३.** दी सॉंग ऑफ रेनेसन्स (अंग्रेजी) प्रकाशक – स्वामी विवेकानन्द रॉक मेमोरियल कमेटी मद्रास, **१४.** एकनाथजी (अंग्रेजी) लेखिका – निवेदिता रघुनाथ भिडे, **१५.** दी सागा ऑफ विवेकानन्द रॉक मेमोरियल (अंग्रेजी) प्रकाशक – विवेकानन्द केन्द्र पत्रिका।

सारगाछी की स्मृतियाँ (१११)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२२-०४-१९६४

प्रातःकाल रास्ते में भ्रमण के समय महाराज के शरीर पर एक मक्खी बैठ गई, उसे देखकर –

महाराज – यह जो मक्खी है, इसमें और मुझमें अन्तर क्या है? जब तक ज्ञान नहीं हुआ है, तब तक अन्तर नहीं है। वह भी देह-मन की आवश्यकता के अनुसार कार्य करती है और मैं भी वही करता हूँ। मेरे कार्य थोड़े परिष्कृत हैं, किन्तु सुख-दुख का अनुभव तो एक है। उसी एक ब्रह्म को तुम्हारे माध्यम से एक प्रकार का, मेरे माध्यम से एक अन्य प्रकार का और इस मक्खी के माध्यम से एक अन्य प्रकार का और फिर रामकृष्ण के माध्यम से एक दूसरे प्रकार का सुख-दुख का अनुभव होता है।

भ्रमण करते हुए वरदा महाराज के साथ भेंट हुई। लौटते समय रास्ते में अद्वैत आश्रम के द्वार के सामने उनसे पूछने पर बोले – ''माँ अपने कपड़े-लत्तों को धोना, पीने का पानी लाना, नाखून काटना आदि सब काम स्वयं ही करती थीं। एक बार मेरे शरीर ढकने का चादर फट गया था। माँ ने स्वयं ही उसे सिल दिया। नलिनी द्वारा नया चादर खरीद देने की बात पर माँ बोली, 'नहीं, वह तो गाँव का लड़का है, उसका इससे ही हो जाएगा और क्या है, दो ही मास तो हैं।' ''

ललित महाराज समय का सदुपयोग करने के लिए गायन सीख रहे हैं।

महाराज – ललित के समान शान्त, धीर-गम्भीर लड़के को क्या कोई कार्य नहीं दिया जा सकता है? क्यों, उससे कहो न – सुबह दो घण्टे शान्त-स्थिर होकर बैठने का अभ्यास करे या दो घण्टे नारायण-भाव से रोगियों की सेवा करे। ऐसा नवयुवक केवल बाजार ही कर रहा है। निकटस्थ मेंहदी के पौधों का घेरा देखकर –

महाराज – इन पौधों की ओर देखो, ये क्या कहते हैं, क्या सोचते हैं। अमेरिका में ओक के वृक्षों में जितना ही आँधी-तूफान लगता है, उतनी ही उसकी जड़ें, मजबूत होती हैं। जमीन को दृढ़ता से पकड़े रहती हैं। मानो एकदम बातें करते हों ! उसके पीछे भी वही चैतन्य है। इस चींटी और रामकृष्ण में अन्तर क्या है? दोनों ने ही अवतरण किया है (जन्म लिया है)। किन्तु रामकृष्ण स्वाधीन हैं। राखाल महाराज का अवतरण ब्रह्मानन्द की पोशाक पहनकर हुआ है। फिर वे स्वेच्छा से अपने 'घर' में जाकर आनन्द कर रहे हैं। इसीलिए तो बाहर भजन हो रहा है और वे अन्तःपुर में – भावराज्य में चले जाते हैं। बाहर आकर वे सोचते हैं कि पहले का कार्य ही चल रहा है। इसीलिए बोले – चलने दो, चलने दो। इसीलिए तो वे अवतार हैं। ठाकुर अवतारों के पिता हैं। वे स्वेच्छया जब जैसा चाहें, वैसा ही कर सकते हैं। वे सर्वत्र जा सकते थे, यहाँ तक कि निराकार तक।

एक कोयल के कूकने पर –

महाराज – माँ का एक पक्षी (तोता) था – गंगाराम। अक्षयचैतन्य ने तो कहा है – माँ उसकी चोंच में पान खिलातीं, प्रसाद देतीं। आशुतोष मित्र ने इसका खण्डन किया है। यह कितनी बड़ी घटना है ! माँ उसे अपने मुँह का पान खिलाती थीं। मेरी ऐसी अक्षमता है कि एक बात भी ठीक से नहीं रख पाता हूँ। इसे याद रखो कि मोक्षदा बाबू से भेंट होने पर उनसे अक्षयचैतन्य को पत्र लिखने के लिये कहूँगा कि इसका स्रोत क्या है? यहाँ तो मानो जीवात्मा का परमात्मा के साथ योग हो रहा है।

'श्रीम दर्शन' पुस्तक में है – महापुरुष महाराज ने साधुओं की ध्यानमूर्ति को प्रणाम किया है। जब तुम ध्यान में बैठते हो, तब मुझे कितना आह्लाद होता है, इसे कैसे

बताऊँ ! मैं मन ही मन सोचता हूँ कि इसके मन में प्रवेशकर देखूँ कि यह किस प्रकार, क्या-क्या ध्यान कर रहा है – इस समय शायद गदाई (गदाधर) को लेकर मैदान में क्रीड़ा कर रहा है, या तालाब में तैर रहा है, या गोद में बैठा है या केवल मुख की ओर एकटक देख रहा है। मेरा भी मन उस समय ऐसा ही रहता है। किसी को इस प्रकार देखते ही उसी बात की उद्दीपना होती है।

रा... – को देखते ही कहता हूँ – '**अहं वैश्वानरो भूत्वा।**' सोचता हूँ कि यह नवयुवक अनेक बाधाओं को पार कर यहाँ आता है, यदि यह बात सुनकर उसके मन में समझ आ जाए और यदि मन का थोड़ा ऐसा अभ्यास हो जाय, तो यह बच जाएगा।

एक दृष्टि से सेवाश्रम का कार्य अध्यापन कार्य से अच्छा है। क्योंकि यहाँ रोगी आया, उसकी सेवा की, बस काम हो गया। किन्तु अध्यापन में अच्छा विद्यार्थी होने पर उसकी बात सोचनी पड़ती है और अच्छे विद्यार्थी भी अध्यापक का संग करना चाहते हैं, सम्पर्क बनाए रखना चाहते हैं। किन्तु जो ज्ञानी है, विवेकी है, विचारशील है, उसकी बात अलग है। मुझे तो दो-तीन दिनों से ज्यो..., प... आदि की बातें स्मरण आ रही हैं। देखो न, सब कैसे नवयुवक हैं ! – काम की तो कोई गंध ही नहीं है, यहाँ तक कि '**प्रमादिनः बहिश्चित्ता**' – मोह-ईर्ष्या कुछ भी नहीं है। सु... को देखे हो तो, वह भी ऐसा ही है। बाँ... बाबू तो एक नम्बर का बुद्धू है, किन्तु वह प्रथम श्रेणी का मनुष्य है। ठीक एक शिशु, मानो एक मोगरा-फूल की कली।

दोपहर में गीता पढ़ते समय चतुर्थ अध्याय के '**यस्य सर्वे समारम्भाः**', इन्हीं सब श्लोकों का पाठ हो रहा है।

महाराज – ये सब मानो शरत् महाराज की आत्मकथा है। महाराज, बाबूराम महाराज थोड़ा ऊपर रहते थे। शरत् महाराज एकदम निरपेक्ष जगत में अचलवत् रहते। रामकृष्णानन्द स्वामी भी विलक्षण थे। वे ठीक-ठीक माँ के सेवक थे।

इस संसार में सुख-दुख की घटनाएँ कैसी हैं? अमेरिका से एक चाकू निर्मित होकर आया है। मैं उसे प्रयोग करना नहीं जानता। प्रयोग करते समय हाथ कट गया, मेरा हाथ कटने के लिए क्या चाकू का कारीगर उत्तरदायी है? प्रयोग की विधि नहीं जानने का दोष है। उसी तरह इस प्रकृति का, जगत का नियम नहीं मानकर या जानकर चलने से ही कष्ट पाना होगा। ठोकरें खानी होगीं।

भगवान इसके उत्तरदायी नहीं हैं। उनकी सृष्टि में रहने पर नियम मानकर चलने में शान्ति है। यदि इसमें असुविधा का अनुभव करते हो, तो सृष्टि से निकलकर बाहर चले आओ। **(क्रमशः)**

पुस्तकें प्राप्त हुईं –

सचित्र महाभारत (पाँच खण्डों में)
लेखक – स्वामी राघवेशानन्द
प्रथम खण्ड, मूल्य –८०/-, द्वितीय खण्ड, मूल्य –९०/-, तृतीय खण्ड, मूल्य –८५/-,चतुर्थ खण्ड – मूल्य – ८५/-, पंचम खण्ड– मूल्य – ६०/-
प्रकाशक : अद्वैत आश्रम, ५ डिही एण्टाली रोड, कोलकाता – ७०००१४

भारत का बच्चा-बच्चा महाभारत से परिचित है। महाभारत भारतीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण शिक्षाप्रद ग्रन्थ है। मूल संस्कृत में लिखित इस महाभारत को बच्चों को सरलता से समझाने के लिये चित्रों के साथ उसकी सरस कहानियों को अँग्रेजी में स्वामी राघवेशानन्द जी ने लिखा और हिन्दी अनुवाद किया है स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने। बच्चों को सुसंस्कृत करने और रोचक ढंग से अपनी संस्कृति से परिचित कराने में ये पुस्तकें अत्यन्त उत्तम, पठनीय, संग्रहणीय हैं।

स्वामी संवित् सुबोधगिरि द्वारा संकलित और सम्पादित डॉ. हरिवंशराय ओबेराय की पुस्तकें

१. भारतीय परम्परा में पुरुषार्थ चतुष्टय, पृ.१२०, मूल्य ७०/-
२. योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण, पृष्ठ-११२, मूल्य-८०/-
३. गीता की विश्वव्यापी प्रतिष्ठा, पृ.१२०, मूल्य-८०/-
४. हमारे आध्यात्मिक महापुरुष, पृष्ठ-२४८, मूल्य-१५०/-
५. मार्क्स के धर्मविषयक विचार की समीक्षा, मूल्य २०/-
६. सृष्टि रहस्य और कर्म का सिद्धान्त, पृ.७२, मूल्य ५०/-
७. मकर संक्रान्ति, विक्रम संवत और अग्रसेन जयन्ती, मूल्य ४०/-
८. भारतीय संस्कृति और पश्चिमी सभ्यता, पृ.११२, मूल्य ८०/-
९. भारतीय परम्परा में काम पुरुषार्थ, पृष्ठ-४८,मूल्य-४०/-
१०. भक्तियोग पृष्ठ-१६०,मूल्य-१००/-

(८,९ और १० के लेखक – स्वामी संवित् सुबोधगिरी)

प्रकाशक एवं वितरक : स्वामी संवित् सुबोधगिरि, श्रीनृसिंह भवन, संन्यास आश्रम, भक्तानन्द शिव मन्दिर, भीनासर–३३४४०३, बीकानेर (राजस्थान) मो. ०९४१३७६९१३९

स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्र-ध्यान से अनुप्राणित हिन्दी काव्यधारा

लखेश चन्द्रवंशी,

शोधार्थी, राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

स्वामी विवेकानन्द, जिनके नाम में ही विवेक और आनन्द समाहित है, वे श्रेष्ठ योगी, विद्वान, वक्ता, गायक, कवि, वादक, प्रचारक आदि अनेक गुणों से युक्त थे। सर्वगुणसम्पन्न होने के बाद भी उनमें अहंभाव नहीं था। वे बहुत सरल, सहज और भावुक थे। स्वामीजी के समग्र साहित्य का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि स्वामीजी एक योद्धा संन्यासी, विश्वमानव महायोगी, करुणामय और प्रखर राष्ट्रभक्त थे।

स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व, स्वामीजी का विचार और स्वामीजी का आह्वान ही भारत का जीवन और संदेश है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का कथन भी इस कड़ी में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वे कहते हैं, ''यदि आप भारत को समझना चाहते हैं, तो विवेकानन्द का अध्ययन कीजिए, उनमें सब कुछ सकारात्मक है, नकारात्मक कुछ भी नहीं है।''[१] अत: स्वामी विवेकानन्द में ही भारत की राष्ट्रीय चेतना, भारत का गौरव, भारत का अध्यात्म, भारत की संस्कृति और भारत की आत्मा का रहस्य है।

उल्लेखनीय है कि स्वामी विवेकानन्द को उनके गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस ने कहा था कि तुझे माँ का कार्य करना है। स्वामीजी ने अपने गुरु के इस आज्ञा पर चिन्तन किया और उन्हें कन्याकुमारी के शिला पर ध्यान से कार्य की दिशा मिली। यहीं स्वामीजी को प्रेरणा मिली कि उन्हें भारत माता का कार्य करना है। स्वामीजी ने सोचा कि भारत माता का कार्य करना है यानी भारत का उत्थान करना है। 'भारत को जाने बिना' यह सम्भव नहीं है। इसलिए स्वामीजी ने जनवरी '१८८७ से ३१ मई, १८९३ तक पूरे भारत का भ्रमण किया। भारत और भारतीय समाज को बड़ी गहनता से समझा। इस दौरान उन्होंने भारत की तत्कालीन दशा, देशवासियों की दयनीय अवस्था और शिक्षित समाज तथा राजा-महाराजाओं की मानसिकता का भी आकलन किया। उन्होंने यह अनुभव किया कि यदि भारत का उत्थान करना है, तो सबसे पहले 'मनुष्य-निर्माण' करना होगा।

स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा ने भारत सहित विश्व के विद्वानों, नेताओं और साहित्यकारों को बहुत प्रभावित किया है। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में तथ्य बताते हैं कि लोकमान्य तिलक, भगिनी निवेदिता, योगी अरविन्द, बिपिनचन्द्र पाल, महात्मा गाँधी, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, हेमचन्द्र घोष, बटूकेश्वर दत्त आदि स्वतन्त्रता सेनानी स्वामीजी के विचारों से अत्यन्त प्रभावित थे। इसी तरह दर्शन, इतिहास, विज्ञान और साहित्यिक जगत के विद्वान यथा – अमेरिकी इतिहासकार विल डुरांट, फ्रेंच विद्वान रोमॉ रोलॉ, रूस के विख्यात उपन्यासकार लियो टॉलस्टाय, चीन के बेजिंग विश्वविद्यालय के इतिहास के अध्यापक हुआंग जिन चुआन तथा भारत में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर, दार्शनिक डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, वैज्ञानिक डॉ. जगदीशचन्द्र बसु, कवि सुब्रमण्य भारती, हिन्दी साहित्य के मनीषियों – आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मुंशी प्रेमचन्द, फणीश्वरनाथ रेणु आदि पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव है, इस बात की पुष्टि उनके कथनों, पुस्तकों और रचनाओं से होती है। इनमें से अधिकांश विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से इसे स्वीकार भी किया है। स्वामी विवेकानन्द के विचारों और कार्यों को धरातल पर कार्यान्वित करनेवाले संगठन रामकृष्ण मिशन व मठ से हिन्दी के महान कवि

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और आंचलिक उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु का प्रत्यक्ष सम्बन्ध था।

स्वामी विवेकानन्द के जीवन दर्शन तथा वैचारिक दर्शन के प्रमुख तत्त्वों के आकलन करने से स्पष्ट होता है कि स्वामीजी केवल भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए ही नहीं, वरन् राष्ट्र के पूर्णरूपेण उत्थान के लिए प्रयत्नरत थे। स्वामीजी की भारत-भक्ति अगाध थी। अपने विश्व-कल्याण की भावना के कारण वे विश्वमानव के रूप में विख्यात हैं। एक राष्ट्रभक्त संन्यासी के रूप में हिन्दी की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा पर उनका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, जबकि उनके विश्व कल्याण अथवा मानवता की दृष्टि हिन्दी की छायावादी काव्य में प्रतिबिम्बित होती है।

स्वामी विवेकानन्द का राष्ट्र-ध्यान

भारत में जो जातिभेद, विषमता, आत्मग्लानि जैसी समस्याएँ हैं, इसे जड़ से समाप्त करना ही होगा, पर कैसे? इसके लिए व्यापक और गहन चिन्तन करना होगा, यह स्वामीजी जानते थे। अत: भारत के अन्तिम छोर पर, कन्याकुमारी में हिन्द महासागर में स्थित श्रीपाद शिला पर बैठकर २५, २६ और २७ दिसम्बर, १८९२ को लगातार तीन दिन और तीन रात स्वामी विवेकानन्द ध्यानस्थ हो गए। यह ध्यान ईश्वर-दर्शन अथवा सिद्धि-प्राप्ति के लिए नहीं था। यह एक 'राष्ट्रीय ध्यान' था। ध्यानस्थ अवस्था में स्वामीजी ने भारत के गौरवशाली अतीत को देखा, तत्कालीन भारत की दयनीय परिस्थिति के कारणों को जाना और भारत के उज्ज्वल भविष्य के लिए व्यापक योजना भी बनाई। इसलिए ऐसा कहा जाता है कि नरेन्द्रनाथ दत्त (स्वामीजी का संन्यास पूर्व नाम) का जन्म कलकत्ता में हुआ, पर स्वामी विवेकानन्द का आविर्भाव कन्याकुमारी में हुआ। यहीं से उनका अमेरिका में आयोजित विश्वधर्म महासभा में हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में जाने का निश्चय हुआ और भारत में राष्ट्रीय चेतना के जागरण के शंखनाद की भूमि भी यहीं से निर्मित हुई। जिस प्रकार भगवान बुद्ध के लिए बोधिवृक्ष का महत्त्व है, उसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द के लिए कन्याकुमारी की उस श्रीपाद शिला का महत्त्व है। १९७० में उस शिला पर भव्य 'विवेकानन्द शिला-स्मारक' का निर्माण हुआ और इसी शिला-स्मारक से स्वामीजी के संदेशों को कार्यान्वित करने के लिए एक अध्यात्म प्रेरित सेवा संगठन 'विवेकानन्द केन्द्र' की स्थापना १९७२ में हुई।

उपर्युक्त राष्ट्र-चिन्तन पर केन्द्रित ध्यान और उनके संदेश को भिन्न-भिन्न प्रकार से कवियों ने वाणी दी है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त पर स्वामी विवेकानन्द का अप्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है, क्योंकि स्वामीजी के जीवन काल में ब्रिटिश सरकार की उन पर कड़ी निगरानी थी। अंग्रेज जानते थे कि भारतीयता अथवा हिन्दुत्व के प्रखर विचार विवेकानन्द के साहित्यों में है, इसलिए स्वामीजी के नाम का उल्लेख किए बिना उस समय बहुत से लेख, कविताएँ और साहित्य की रचना की गई। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी, जिन्हें मैथिलीशरण गुप्त अपना साहित्यिक गुरु मानते थे, ने १९०२ में स्वामीजी की महासमाधि के बाद १९०३ में 'सरस्वती' में फरवरी-मार्च के संयुक्तांक में 'महात्मा रामकृष्ण परमहंस' शीर्षक से एक सुदीर्घ प्रबन्ध लिखा, जो उनके 'चरितचर्या' (१९२९ ई.) पुस्तक में २८ पृष्ठों में पुनर्मुद्रित हुआ।[३] इसके अलावा महावीर प्रसाद द्विवेदी ने रामकृष्ण-विवेकानन्द से सम्बन्धित हिन्दी में प्रकाशित अनेक पुस्तकों की समीक्षाएँ भी लिखीं हैं। उल्लेखनीय है कि भारत-भारती की रचना के लिए द्विवेदी का पर्याप्त मार्गदर्शन मैथिलीशरण गुप्त को प्राप्त हुआ है। भारत-भारती में एक स्थान पर गुप्त ने स्वामी विवेकानन्द के नाम का भी उल्लेख किया है। गुप्त लिखते हैं –

महावीर प्रसाद द्विवेदी

यह ठीक है, पश्चिम बहुत ही कर रहा उत्कर्ष है,
पर पूर्व-गुरु उसका यही पुरु वृद्ध भारतवर्ष है।
जाकर विवेकानन्द-सम कुछ साधु जन इस देश के,
करते उसे कृतकृत्य हैं अब भी अतुल उपदेश से।।६४।।[३]

स्वामी विवेकानन्द ने श्रीपाद शिला पर भारत के अतीत, वर्तमान और भविष्य के चिन्तन की बात कही थी, इसी बात को मैथिलीशरण गुप्त ने भारत-भारती में इन शब्दों में व्यक्त किया है –

हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी।
आओ, विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।।१४।।[४]

बालकृष्ण शर्मा नवीन भी अपने एक दोहे में शिलाखण्ड पर बैठकर चिन्तन करने की बात कहते हैं –

शिलाखण्ड पै बैठि हम, नित हिय लोचन चीर।
देखि रहे जग-मग-चलत, इन पन्थिन की भीर।।३९।।[५]

स्वामी विवेकानन्द राष्ट्रभक्त संन्यासी थे। इसलिए उनके शब्दों में भारत और अध्यात्म एक साथ, एक दूसरे के पूरक प्रतीत होते हैं। पाश्चात्य देशों में अपने स्मरणीय प्रचार कार्य के बाद स्वामी विवेकानन्द १५ जनवरी, १८९७ को जहाज से कोलम्बो में उतरे, तब उनका भव्य स्वागत किया गया। १६ जनवरी, १८९७ को 'फ्लोरल हॉल' में स्वामीजी ने कहा, – ''यदि इस पृथ्वीतल पर कोई एक ऐसा देश है, जो मंगलमयी पुण्यभूमि कहलाने का अधिकारी है, ऐसा देश जहाँ संसार के समस्त जीवों को अपना कर्मफल भोगने के लिए आना ही है, ऐसा देश जहाँ ईश्वरोन्मुख प्रत्येक आत्मा को अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने के लिए पहुँचना अनिवार्य है, ऐसा देश जहाँ मानवता ने ऋजुता, उदारता, शुचिता एवं शान्ति का चरम शिखर स्पर्श किया हो तथा इन सबसे आगे बढ़कर भी जो देश अन्तर्दृष्टि एवं आध्यात्मिकता का घर हो, तो वह देश भारत ही है।'[६] स्वामीजी के इन शब्दों की छाप राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के इन पदों में स्पष्ट देखी जा सकती है। 'भारतवर्ष की श्रेष्ठता' का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है –

मैथिलीशरण गुप्त

भू-लोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है,
भारत एक विचार, स्वर्ग को भू पर लानेवाला।
भारत एक भाव, जिसको पाकर मनुष्य जगता है।
भारत एक जलज, जिसका जल का न दाग लगता है।
भारत है संज्ञा विराग की, उज्ज्वल आत्म-उदय की,
भारत है आभा मनुष्य की सबसे बड़ी विजय की।
भारत है भावना दाह जग-जीवन को हरने की,
भारत है कल्पना मनुज को राग-मुक्त करने की।
जहाँ कहीं एकता अखण्डित, जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश-देश में खड़ा वहाँ भारत जीवित, भास्वर है।
भारत वहाँ, जहाँ जीवन साधना नहीं है भ्रम में,
धाराओं को समाधान मिला हुआ संगम में।
जहाँ त्याग माधुर्य पूर्ण हो, जहाँ भोग निष्काम,
समरस हो कामना, वहीं भारत को प्रणाम।[७]

स्वामी विवेकानन्द का स्वदेश मंत्र है – ''भारत का समाज मेरे बचपन का झूला, जवानी की फुलवारी और बुढ़ापे की काशी है। कहो, भारत के कल्याण में ही मेरा कल्याण है।'' उल्लेखनीय है कि स्वामी विवेकानन्द जब विदेश से भारत लौटे, तो भूमि पर पैर रखते ही सबसे पहले भारत की मिट्टी को अपने सिर पर धारण किया। स्वामीजी ने तब कहा था – मैं बहुत दिनों से भोगभूमि से लौटा हूँ, आज मेरी पुण्यभूमि भारत माता की गोद में आया हूँ। ऐसा कहते हुए वे भारत की मिट्टी को अपने शरीर पर लगाने लगे। स्वामीजी के साथ आए ६-७ अंग्रेज भी स्वामीजी को देखकर भारतभूमि का वन्दन करने लगे। यह प्रसंग दर्शाता है कि स्वामीजी भारत माता से कितना अधिक प्रेम करते थे ! परवर्तीकाल में इस प्रसंग से प्रेरित होकर मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा –

उसका कि जो ऋषिभूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है।।१५।।[८]

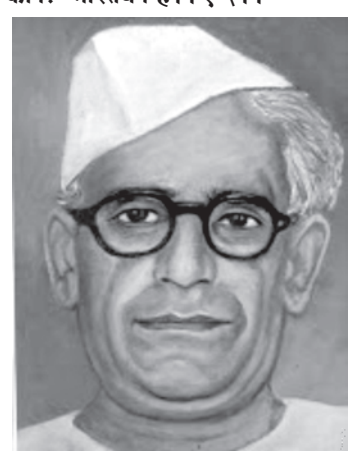
बालकृष्ण शर्मा

पृथ्वी में अध्यात्म की ज्योति जहाँ सबसे पहले प्रकाशित हुई और जहाँ प्रत्येक मनुष्य को मुक्ति का मार्ग मिला, वह देश कोई और नहीं, भारत ही है। इस कथन को स्वामी विवेकानन्द ने अपने व्याख्यानों में अनेकों बार दोहराया है। स्वामीजी के इस कथन की काव्याभिव्यक्ति बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कविता 'मेरे अतीत की ज्योति-लहर' में हुई है। नवीन ने इस कविता की रचना २८ दिसम्बर, १९४३ को बरेली के केन्द्रीय कारागार में की। वे लिखते हैं –

मानव ने इस भू पर खोले सबसे पहले निज हिय-लोचन,

औ इसी नभ तले तो उसने सन्देश दिया भव-भय-मोचन;
सबसे पहले इस भू पर ही चमकीं किरणें ज्ञानोदय की,
यो भवति, न भवति, व्यथाएँ सब मिट गयीं मनुज के संशय की,
बोलो, कब मेघाच्छन्न हुआ अति प्रखर तम्हारा वह दिनकर?
लहराती है जग में उसकी सच्चिदानन्द में ज्योति-लहर ![९]

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' भारत की आध्यात्मिकता और दिव्यता को अलग विशेषण देकर इन शब्दों में अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं – **भारत एक स्वप्न, भू को ऊपर ले जानेवाला।** अनेक कवियों ने कविताओं और गीतों की रचना की। यही भाव राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की रचना 'मातृभूमि' में दिखाई देता है –

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर'

जिस पृथ्वी में मिले हमारे पूर्वज प्यारे।
उससे हे भगवान ! कभी हम रहें न न्यारे।।
लोट-लोट कर वहीं हृदय को शान्त करेंगे।
उसमें मिलते समय मृत्यु से नहीं डरेंगे।।
उस मातृभूमि की धूल में, जब पूरे सन जायेंगे।
होकर भव-बन्धन-मुक्त हम, आत्म रूप बन जायेंगे।।[१०]

उल्लेखनीय है कि अंग्रेजों के शासन में भारत, भारतीय इतिहास और दर्शन को व्यर्थ और काल्पनिक बनाने का जो षड्यन्त्र चल रहा था, वह स्वामी विवेकानन्द के तर्कपूर्ण और भक्तिमय विचारों से ध्वस्त हो गया। स्वामीजी ने भारत को एक पुण्यभूमि, वेदभूमि, धर्मभूमि, वीरभूमि और मोक्षभूमि कहकर सम्पूर्ण विश्व में प्रतिष्ठित किया था। भारत की इस गौरव गाथा का प्रभाव भारत के कोने-कोने में पड़ा था और यह प्रभाव आज भी विद्यमान है।

स्वामी विवेकानन्द का स्पष्ट मत था कि सम्पूर्ण देशवासियों तक आध्यात्मिक ज्ञान पहुँचे। उन्होंने कहा भी था, 'हे भारत, उठो और अपनी आध्यात्मिकता से विश्वविजयी बनो।'' अमुक व्यक्ति गरीब है, वह नीच है, वह निम्न जाति का है, ऐसा सोचकर उन्हें वेदों और उपनिषदों से वंचित नहीं रखा जा सकता। इसलिए स्वामी विवेकानन्द ने बहुत प्रभावी ढंग से कहा था – 'सर्वप्रथम, हमारे उपनिषदों, पुराणों और अन्य सब शास्त्रों में जो अपूर्व सत्य छिपे हुए हैं, उन्हें इन ग्रंथों के पन्नों से बाहर निकालकर, मठों की चहारदीवारियाँ भेदकर, वनों की निर्जनता से निकालकर, कुछ विशेष सम्प्रदायों के हाथ से छीनकर देश में सर्वत्र बिखेर देना होगा, ताकि ये सत्य दावानल के समान पूरे देश को चारों ओर से लपेट लें, उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक सर्वत्र फैल जाएँ, हिमालय से कन्याकुमारी और सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक सर्वत्र धधक उठे।''[११]

स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों, लेखों और पत्रों के माध्यम से धर्म की अवधारणा, हिन्दू तथा हिन्दुत्व की संकल्पना, भारत के जीवन ध्येय, योग की व्याख्या, नारी-जाति के उत्थान, शिक्षा की अवधारणा आदि को स्पष्ट किया। उन्होंने दलितों -शोषितों-पीड़ितों की सेवा अर्थात् दरिद्रनारायण की सेवा, 'शिव-भाव से जीव-सेवा' का मन्त्र दिया। स्वामीजी ने देशवासियों से भारत से प्रेम करने और भारत के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने का आह्वान किया। उन्होंने भारतवर्ष को जाग्रत कर उन्हें एकात्मता के सूत्र में जोड़ने का प्रयत्न किया। उनके विचार भारत को संगठित होने की प्रेरणा देते हैं। ○○○

सन्दर्भ सूची : १. मेरा भारत - अमर भारत (२००९), रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृष्ठ १६८, **२.** स्वामी विदेहात्मानन्द : विवेक-ज्योति (जनवरी २०११), प्रकाशक रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर पृष्ठ २६, **३.** मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती, प्रकाशक, साहित्य सदन, झांसी (बयालीसवाँ संस्करण २००५), पृष्ठ ३२, **४.** मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती, प्रकाशक, साहित्य सदन, झांसी (बयालीसवाँ संस्करण २००५), पृष्ठ १४, **५.** (दोहा, भाग ४ - बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'), **६.** विवेकानन्द साहित्य : प्रकाशक स्वामी तत्वविदानन्द, अद्वैत आश्रम (१९६३, पुनर्मुद्रण २०१४) खंड ५, प्राची में प्रथम सार्वजनिक व्याख्या, कोलम्बो, **७.** सच्चा भारत -रामधारी सिंह 'दिनकर', **८.** मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती, प्रकाशक, साहित्य सदन, झांसी (बयालीसवाँ संस्करण २००५), पृष्ठ १४, **९.** बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : हम विषपायी जनम के, पृष्ठ ५०५,(मेरे अतीत की ज्योति-लहर-बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'), **१०.** स्वदेश संगीत-मातृभूमि - मैथिलीशरण गुप्त), **११.** विवेकानन्द साहित्य : प्रकाशक स्वामी तत्त्वविदानन्द, अद्वैत आश्रम (१९६३, पुनर्मुद्रण २०१४) खंड ५, पृष्ठ ११६.

जो लोग आँखें खोले हुए हैं, जो पाश्चात्य जगत् के विभिन्न राष्ट्रों के मनोभावों को समझते हैं, जो विचारशील हैं तथा जिन्होंने भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के विषय में विशेष रूप से अध्ययन किया है, वे देख पायेंगे कि भारतीय चिन्तन के इस धीर और अविराम प्रवाह के सहारे संसार के भावों, व्यवहारों, पद्धतियों और साहित्य में कितना बड़ा परिवर्तन हो रहा है।

– स्वामी विवेकानन्द

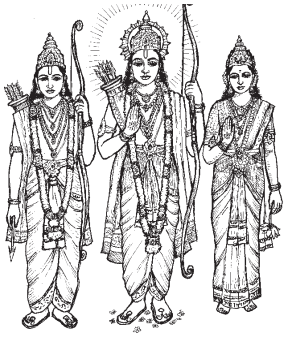

रामराज्य का स्वरूप (४/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

रामायण में वह शब्द आया है, नारदजी ने भगवान से कहा –

भले भवन अब बायन दीन्हा। १/१३६/५

बायन शब्द यहाँ विशेष अर्थ में है। आप वैसे किसी को मिठाई खिलावें, तो वह बायन नहीं है, लेकिन विवाह के बाद जब बारात लौटकर आती है, तो जिनके घर विवाह होता है वह लड्डू, मिठाई आदि अपने सगे-सम्बन्धियों के घर भेजते हैं। यह जो सामान भेजा जाता है, उसके लिए एक शब्द है उत्तर प्रदेश के हिन्दी भाषा में बायन भेजना। मिठाई नहीं, बायन भेजा गया। तो बायन के साथ एक बात जुड़ी हुई है। क्या? कि जब भी वह बायन आता है, तो गिन लिया जाता है। बिना गिने नहीं लिया जाता। क्योंकि जब मेरे घर विवाह होगा, तो इतनी ही मिठाई उसके घर भी भेजनी होगी। इसको बायन कहते हैं।

नारदजी ने भगवान से यही कहा –

भले भवन अब बायन दीन्हा।
पावहुगे फल आपन कीन्हा।। १/१३६/५

तुमने मुझे यह जो बायन दिया है, बायन का बदला अगर सही ढंग से नहीं पहुँचाया गया, तो समाज में उसकी स्थिति नीची मान ली जाती है। तो कैकेयीजी, बायन पर विश्वास करती हैं। जो क्रियापरायण हैं, वे सब करते हैं। तुम मुझसे जैसा व्यवहार करोगे, हम तुमसे वैसा व्यवहार करेंगे। इससे भी जो गये बीते हैं, जो अच्छा व्यवहार करने पर भी बुरा व्यवहार करते हैं, उनका चरित्र तो बड़ा निन्दनीय है, पर अधिकांश अच्छे लोगों के बीच भी व्यवहार का मापदण्ड यही है कि आप हमसे जैसा व्यवहार करेंगे, हम भी आपसे वैसा ही व्यवहार करेंगे। कैकेयी का व्यवहार श्रीराम के प्रति इतनी उदारता का जो दिखाई देता है, वह भी उसी भावना से प्रेरित है कि राम यदि अपनी माता से अधिक मुझे चाहते हैं, तो मुझे भी अपने बेटे भरत से अधिक राम को चाहना चाहिए। मानो एक प्रतिक्रिया का भाव, एक आरोपित भाव, व्यवहार का एक आधार उन्होंने जीवन में स्वीकार कर लिया और मन्थरा इस कला में बड़ी निपुण है। मन्थरा ने तुरन्त कह दिया – वे दिन तो बीत गए। भूल जाइए।

रहा प्रथम अब ते दिन बीते।
समउ फिरें रिपु होहिं पिरीते।।
भानु कमल कुल पोषनिहारा।
बिनु जल जारि करइ सोइ छारा।।
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी।
रूँधहु करि उपाय बर बारी। २/१६/६-८
तुम्हहि न सोचु सोहाग बल जिन बस जानहु राउ।
मन मलीन मुह मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ।। २/१७/०
चतुर गँभीर राम महतारी।
बीचु पाइ निज बात सँवारी।।
पठए भरतु भूप ननिअउरें।
राम मातु मत जानब रउरें।। २/१७/१-२

ऐसा भाषण दिया मन्थरा ने। इस कला में वह बड़ी निपुण थी, यह बात कहना मैं नहीं भूलता।

हमारे एक पत्रकार मित्र थे। कानपुर में जब वे सेवानिवृत्त हुए, तब उनके सम्मान की सभा में मुझे बुलाया गया। वहीं मुझसे आग्रह कर दिया गया कि पत्रकारिता के लिये रामायण में क्या आदर्श है? मैंने कहा कि पत्रकारिता के दो ही आदर्श हैं – या तो मन्थरा या हनुमानजी। या तो आप हनुमानजी के समान संदेश दीजिए या तो मन्थरा के समान संदेश दीजिए। हनुमानजी का संदेश मिलानेवाला संदेश है। भगवान राम और सीताजी एक-दूसरे से दूर हैं और दोनों

के मन में एक प्रश्न है एक-दूसरे से। हनुमानजी दोनों के पास एक-दूसरे की बात इतनी मधुर पद्धति से पहुँचाते हैं कि दोनों का आनन्द, दोनों का हृदय भर जाता है। यद्यपि वे तो निरन्तर समीप थे, पर और भी अधिक रस की अनुभूति श्री सीताजी और श्रीराम के मन में हनुमानजी ने उत्पन्न कर दी। ऐसा संदेश सुनानेवाले थे हनुमानजी !

प्रभावशाली संदेश देने में मन्थरा निपुण है। उसने यह नहीं कहा कि तुमने जो बातें कहीं, वे सब झूठी हैं, वह झूठ को सच और सच को झूठ करना जानती है। वह जानती है कि सामनेवाले की बात को मैं जड़ से मिटाऊँगी, तो इसे मेरी बात पर विश्वास नहीं होगा। इसलिए सच और झूठ का अच्छा मिश्रण करने की कला में वह अत्यन्त निपुण है। उसने तुरन्त कहा – आप ठीक कहती हैं। सचमुच आपने बिलकुल ठीक कहा। राम आपको अधिक चाहते हैं, यह मैं जानती हूँ। आपने परीक्षा लेकर देखा, ठीक है। लेकिन – **रहा प्रथम अब ते दिन बीते।** यह तो बहुत पहले की बात है। तब आपकी परीक्षा में राम पास हो गये थे। पर अब मैंने जो परीक्षा की है, उसमें राम की वह स्थिति नहीं है। तब उसने सत्य-झूठ का ऐसा बढ़िया प्रयोग कर कहा – राम को राज्य मिलनेवाला है। यह तो सत्य था। उसमें झूठ का तुरन्त मिश्रण कर दिया।

भयउ पाखु दिन सजत समाजू।
तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू।। २/१८/३

पन्द्रह दिन से तैयारी हो रही है। आपसे छिपाया गया। बस, कैकेयी को इसमें षड्यंत्र का आभास होने लगा। वस्तुत: न तो पन्द्रह दिन से तैयारी हो रही थी, न कैकेयी से छुपाने की कोई चेष्टा की जा रही थी, लेकिन एक संदेह उत्पन्न कर दिया। बोली, अगर कोई षड्यन्त्र न होता, तो पन्द्रह दिन छिपाया क्यों जाता? कैकेयी अगर सावधान होती, तो मन्थरा से पूछ देती कि तुमने पन्द्रह दिन पहले समाचार क्यों नहीं दिया? इसे पन्द्रह दिन बाद तुम कैसे बता रही हो? वे सावधान नहीं थीं। उन्हें लगा कि यह मन्थरा तो मेरी बड़ी हितैषी है, बड़ी विश्वसनीय सेविका है और पन्द्रह दिन व्यतीत हो गया, तब तो इससे बढ़कर षड्यन्त्र की कोई बात नहीं है। दृष्टान्त देने में मन्थरा बड़ी कुशल है, अपनी बात को रखने की कला में बड़ी निपुण है। उसने दृष्टान्त कितना बढ़िया दिया – ये संसार के सम्बन्ध तो बदलते रहते हैं। व्यवहार का स्वभाव है बदलाव। उसने दृष्टान्त दिया – देखो सूर्य और कमल में कितना मधुर सम्बन्ध है, सूर्य कमल को विकसित करता है। सूर्योदय होते ही कमल खिल उठता है। दूसरी ओर? एक ओर तो सूर्य कमल को जीवन देता है और दूसरी ओर सूर्य के द्वारा जल सूख जाता है और जब कमल के नीचे का जल सूख जाता है, तो कमल को खिलाने वाला सूर्य ही उस कमल को जलाकर नष्ट कर देता है। यही स्थिति आपकी है। क्या? इस समय सूर्य और कमल की तरह, आप कमल हैं और राम सूर्य की तरह आपकी प्रसन्नता के लिये आपको खिला हुआ देखने के लिए प्रयत्न करते थे। लेकिन आज तक आप राजसत्ता के जल में थीं, तभी तक इतना सम्मान देते थे। अब जब वह राजसत्ता का जल सूख जायेगा, तब आपको राम जला कर नष्ट ही कर देंगे। ऐसा विलक्षण मन्थरा ने किया और कहा –

जरि तुम्हारि चह सवति उखारी।

तुम्हारी सौत कौशल्या बड़ी षड्यन्त्रकारी है। अरी, तुम तो बड़ी भोली हो। यह बात ऐसी है, जो सबको बड़ी पसन्द आती है। इसे सड़क पर हाथ देखनेवाले ज्योतिषी भी यह बात कहना नहीं भूलते कि आप तो दूसरों का भला चाहते हैं, पर लोग ही आपका बुरा चाहते हैं। लोगों को अपनी स्तुति सुनकर बड़ी प्रसन्नता होती है। मन्थरा ने कहा, अरे वह कौशल्या? आपकी क्या बात है, आप तो अत्यन्त भोली और सरल स्वभाव की हैं और वह तो –

चतुर गँभीर राम महतारी।
बीचु पाइ निज बात सँवारी।।

फिर ऐसा ताना-बाना जोड़ दिया, बोली, जरा सोचिए, भरत को ननिहाल क्यों भेजा गया? भरत को ननिहाल इसीलिए भेजा गया कि कौशल्या ने यह योजना बहुत दिनों से बना रखी है – किसी प्रकार से भरत को दूर भेज दिया जाय और यहाँ राम को राज्य दे दिया जाय। बस सूत्र यह है कि मैं और मेरेपन की वृत्ति तो कैकेयीजी के जीवन में विद्यमान थी ही, पर मैं और मेरेपन का सदुपयोग अच्छे व्यवहार के रूप में हो रहा था, परन्तु मन्थरा ने अविद्या माया के रूप में मन में ज्योंही संशय उत्पन्न कर दिया, कैकेयीजी की वृत्ति आक्रान्त हो जाती है। उन्होंने कहा कि लोग तो बायन जितना भेजा जाता है, उतना ही भेजते हैं, लेकिन मैंने निर्णय कर लिया है। क्या?

शेष भाग पृष्ठ ३८ पर

श्रीरामकृष्ण-गीता (७)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

द्वितीयोऽध्यायः

ईश्वरः

श्रीरामकृष्ण उवाच

किं नु जानासि सर्वेषु भगवान् राजते कथम्।
यवनिकान्तराले स्युः धनिकानां यथाङ्गनाः।।१।।

अनुवाद : श्रीरामकृष्ण बोले – भगवान सभी के भीतर किस प्रकार विराज करते हैं, जानते हो? जैसे परदे के पीछे बड़े घर की महिलायें रहती हैं।।१।।

ताः सर्वानेव पश्यन्ति कश्चित्ता नार्हतीक्षितुम्।
तथैव सर्वभूतेषु भगवांस्तु विराजते।।२।।

अनुवाद : वे सभी को देखती हैं, परन्तु उनको कोई देख नहीं पाता। भगवान ठीक उसी प्रकार सभी भूतों में विराजमान रहते हैं।।२।

प्रदीपस्य स्वभावोऽयमालोकस्य प्रदीपनम्।।
कश्चिल्लिखति वा कूटमन्नं पचति कोऽपि वा।।३।।

अनुवाद : दीपक का स्वभाव है ज्योति या प्रकाश फैलाना, उससे कोई भोजन पकाते हैं और कोई कपट रचते हैं।।३।।

को भागवतमध्येति प्रकाशेन च तेन वा।।
तर्हि कोऽप्यत्र दोषोऽस्य किमालोकस्य विद्यते।।४।।

अनुवाद : और कोई उस प्रकाश में भागवत पाठ करते हैं, तो क्या इसमें प्रकाश का कोई दोष है?।।४।।

कश्चिद् वा चेष्टते मुक्तिं नाम्ना भगवतस्तथा।।
कश्चित् करोति चौर्यञ्च दोषोऽसावीश्वरस्य किम्।।५।।

अनुवाद : उसी प्रकार कोई भगवान के नाम से मुक्ति पाने का प्रयास कर रहे हैं और कोई चोरी करने की चेष्टा कर रहे हैं, इसमें भगवान का क्या दोष है?।।५।।

यथा भावस्तथा लाभः कल्पवृक्षोऽयमीश्वरः।।
यो यद्वै याचते तस्मादवाप्नोति तदेव सः।।६।।

अनुवाद : जिसका जैसा भाव होता है, उसे वैसा ही लाभ मिलता है। भगवान कल्पवृक्ष हैं। उनके पास जो जैसी याचना करता है, वह वही प्राप्त करता है।।६।।

लब्ध्वा दीनसुतः शिक्षामुच्चन्यायाधिपोऽपि सन्।।
स खलु मन्यते तर्हि सुस्थितोऽहमहोपरम्।।७।।

अनुवाद : गरीब घर का लड़का शिक्षा ग्रहण कर और उच्च न्यायालय का न्यायाधीश बनकर मन-ही-मन सोचता है, अहा ! मैं बहुत सुखी हूँ।।७।।

स्वस्थस्त्वमेधि वत्सेति तदाह भगवानपि।।
वृत्तिं लब्ध्वा विरामे तु ततः स्वगृहमावसन्।।८।।
तदा स बुध्यतेऽहो किं जीवितेऽस्मिन् कृतं मया।।
वाढं किं कृतवांस्त्वं वै तदेत्याह तमीश्वरः।।९।।

अनुवाद : श्रीभगवान भी तब कहते हैं, ''हे वत्स ! सुखी ही रहो''। उसके बाद कर्म से अवसर प्राप्त कर पेंशन लेकर जब अपने घर में रहता है, तब वह समझता है – ''हाय ! मैंने इस जीवन में क्या किया ! भगवान भी तब कहते हैं, 'ठीक ही, तुमने क्या किया?' ''।।८-९।।

न भेदो ब्रह्मशक्त्योः स्यात् शुद्धं ब्रह्मेति कथ्यते।।
यदा तन्निष्क्रियं तिष्ठेत् ह्यपि कुरुते पुनः।।
सृष्टिस्थितिलयादीनि तच्छक्तेरुच्यते क्रिया।।१०।।

अनुवाद : ब्रह्म और शक्ति में कोई भेद नहीं है। जब ब्रह्म निष्क्रिय रहते हैं, तब उन्हें शुद्ध ब्रह्म कहते हैं, जब सृष्टि, स्थिति, प्रलय इत्यादि करते हैं, तब उनकी शक्ति का अर्थात् ब्रह्म की शक्ति का कार्य कहते हैं।।१०।। **(क्रमशः)**

वास्तविक सहायता

आशा गुप्ता, दिल्ली

स्वामी विवेकानन्द जी ने जीवन की परिभाषा देते हुए मैसूर के महाराजा को लिखा था – ''महामना राजन्! यह जीवन क्षणस्थायी है, संसार के भोग-विलास की सामग्रियाँ भी क्षणभंगुर हैं। वे ही यथार्थ में जीवित हैं, जो दूसरों के लिये जीवन धारण करते है। बाकी लोगों का जीना तो मरने ही के बराबर है।'' स्वामीजी सदा दूसरों की सहायता और सेवा करने की प्रेरणा देते हैं। इसी से सम्बन्धित एक प्रेरक घटना उल्लेखनीय है –

बैंगलुरु की ओर जा रही उदयन एक्सप्रेस के रिजर्व कंपार्टमेंट में बड़ी भीड़ थी। तीन लोगों की सीट पर छह लोग बैठे थे। तभी टिकट-परीक्षक टिकट जाँच करता हुआ, वहाँ आ पहुँचा। सबने अपने-अपने टिकट उसे दिखाए। तभी उसकी दृष्टि एक सीट के नीचे दुबकी हुई ग्यारह-बारह साल की एक दुबली-पतली-सी लड़की पर पड़ी। उसने उसे टिकट दिखाने के लिए कहा। लड़की डर के मारे काँपती हुई-सी बाहर निकली और रोने लगी। उसने कहा कि उसके पास टिकट नहीं है। कोई स्टेशन आ गया था। टिकट-परीक्षक ने उसे डाँटते हुए गाड़ी से नीचे उतरने के लिए कहा। तभी उसे एक महिला की आवाज सुनाई पड़ी, ''इस लड़की का बैंगलुरु तक का टिकट बना दो, इसके टिकट के पैसे मैं दे देती हूँ।'' टिकट-परीक्षक ने कहा – मैडम ! इसका टिकट बनवाने के बदले इसे दो-चार रुपए दे दो, तो यह अधिक खुश होगी। लेकिन महिला ने टिकट-परीक्षक की बात को न मानकर उस लड़की का टिकट ले लिया। महिला ने लड़की से पूछा, वह कहाँ जा रही है। उसने कहा – पता नहीं मेम साहब। लड़की ने अपना नाम चित्रा बतलाया।

महिला ने कहा कि चित्रा तुम मेरे साथ बैंगलुरु चलो। बैंगलुरु पहुँचकर महिला ने चित्रा को अपनी जान-पहचान की एक स्वयंसेवी संस्था को सौंप दिया। चित्रा वहाँ रहकर अच्छी तरह से पढ़ाई करने लगी। महिला फोन करके उसका हालचाल पता करती रहतीं। करीब बीस साल बाद उन महिला को अमरीका के सैन फ्रांसिस्को में रह रहे कन्नड़ समुदाय के एक कार्यक्रम में व्याख्यान देने के लिये आमंत्रित किया गया। कार्यक्रम जिस होटल में था, कार्यक्रम के बाद ये महिला उसी होटल में रुक गईं। बाद में जब वे अपना बिल देने के लिये रिसेप्शन काउन्टर पर गईं, तो पता चला कि उनके बिल का भुगतान वहीं सामने बैठे एक दम्पती ने कर दिया है। महिला उस दम्पती की ओर मुड़ीं और उनसे पूछा ''आप लोगों ने मेरा बिल क्यों भर दिया?'' महिला ने कहा, ''मैम ! गुलबर्गा से बैंगलुरु तक के टिकट के सामने यह कुछ भी नहीं है।'' महिला ने ध्यानपूर्वक युवती को देखा और कहा, ''अरे, चित्रा तुम !'' ये महिला कोई और नहीं, अपितु इम्फोसिस फाउंडेशन की अध्यक्षा सुधा मूर्ति थीं। ऐसी सहायता ही वास्तविक सहायता कही जाती है, जो किसी के जीवन को परिवर्तित कर दे। जिन लोगों में दूसरों की सहायता करने की शक्ति होती है, वे स्वयं जीवन में कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाते हैं, इसकी कोई भी सीमा नहीं है। ○○○

मैं उस एकमात्र सम्पूर्ण आत्माओं के समष्टिरूप ईश्वर की पूजा कर सकूँ जिसकी सचमुच सत्ता है और जिसका मुझे विश्वास है। सबसे बढ़कर, सभी जातियों और वर्णों के पापी, तापी और दरिद्र रूपी ईश्वर ही मेरा विशेष उपास्य है।

– स्वामी विवेकानन्द

प्रश्नोपनिषद् (२०)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

तृतीय प्रश्न

अथ हैनं कौसल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ। भगवन्कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्शरीर आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनोत्क्रमते कथं बाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममिति ।।३/१।।

अन्वयार्थ – **अथ ह** इसके बाद **आश्वलायनः** अश्वल के पुत्र **कौसल्यः** कौशल्य ने **एनं** उन (पिप्पलाद) से पप्रच्छ पूछा – **भगवन्** हे भगवन, **एषः** यह पूर्वोक्त **प्राणः** प्राण **कुतः** किस कारण से **जायते** उत्पन्न होता है? **कथम्** कैसे (किस निमित्त से) **अस्मिन्** इस **शरीरे** शरीर में **आयाति** आता है? **वा** या **कथं** किस प्रकार **आत्मानं** स्वयं को **प्रविभज्य** प्रविभक्त करके (शरीर में) **प्रातिष्ठते** विद्यमान रहता है? **केन** किस प्रकार (वह शरीर से) **उत्क्रमते** बाहर निकलता है? **कथं** किस प्रकार (वह) **बाह्यम्** बाह्य जगत् को **अभिधत्ते** धारण करता है? (और) **कथम्** कैसे **अध्यात्मम् इति** अध्यात्म शरीर-इन्द्रियों आदि को धारण करता है?

भावार्थ – इसके बाद अश्वल के पुत्र कौशल्य ने उन (पिप्पलाद) से पूछा – हे भगवन, यह पूर्वोक्त प्राण किस कारण (कहाँ) से उत्पन्न होता है? कैसे (किस निमित्त से) इस शरीर में आता है? या किस प्रकार स्वयं को प्रविभक्त करके (शरीर में) विद्यमान रहता है? किस प्रकार (वह शरीर से) बाहर निकलता है? किस प्रकार (वह) बाह्य जगत् को धारण करता है? (और) कैसे अध्यात्म शरीर-इन्द्रियों आदि को धारण करता है?

भाष्य – अथ हैनं कौसल्य: च आश्वलायन: पप्रच्छ। प्राण: हि एवं प्राणै: निर्धारित-तत्त्वै: उपलब्ध-महिमा-अपि संहतत्वात् स्यात् अस्य कार्यत्वम् – अत: पृच्छामि –

भाष्यार्थ – अब अश्वल के पुत्र आश्वलायन कौसल्य ने पूछा – इस प्रकार प्राणों (इन्द्रियों) द्वारा मुख्य प्राण की महिमा निर्धारित हो जाने के बाद भी, एक संहत (संयुक्त) वस्तु का अंश होने से वह कार्य (फल) हो सकता है, अत: मैं पूछता हूँ –

भाष्य – भगवन् कुत: कस्मात् कारणात् एष: यथावधृत: प्राण: जायते? जात: च कथं केन वृत्ति-विशेषेण आयाति अस्मिन् शरीरे? किं निमित्तकम् अस्य शरीर-ग्रहणम्? इत्यर्थ:।

भाष्यार्थ – हे भगवन्, जो मुख्य (संहत) प्राण उपरोक्त प्रकार से निर्धारित (सिद्ध) हुआ है, वह कहाँ से अर्थात् किस (उपादान) कारण से उत्पन्न होता है? और उत्पन्न होने के बाद कैसे अर्थात् किस विशिष्ट वृत्ति के द्वारा इस शरीर में आता है? किस निमित्त (कारण) से इसका शरीर-ग्रहण होता है?

भाष्य – प्रविष्टश्च शरीरे आत्मानं वा प्रविभज्य प्रविभागं कृत्वा कथं केन प्रकारेण प्रातिष्ठते प्रतितिष्ठति? केन वा वृत्ति-विशेषेण अस्मात् शरीरात् उत्क्रमते उत्क्रामति। कथं बाह्यम् अधिभूतम् अधिदैवतं च अभिधत्ते धारयति? कथम् अध्यात्मम् इति धारयति? इति शेष:।।

भाष्यार्थ – शरीर में प्रविष्ट होकर, वह स्वयं को किस प्रकार प्रविभक्त करके इसमें स्थित रहता है। किस प्रकार, कौन-सी विशिष्ट वृत्ति (क्रिया) के द्वारा इस शरीर से बाहर निकल जाता है? वह किस प्रकार बाह्य (स्वयं से भिन्न) अधिभूत (स्थूल) तथा अधिदैव (सूक्ष्म) को धारण करता है और कैसे अध्यात्म (मन-बुद्धि तथा अस्थि-मांस) को 'धारण करता है'।।३/१।। **(क्रमशः)**

आत्मा नित्य है, क्योंकि वह सत् स्वरूप है। शरीर नश्वर और अनित्य है, क्योंकि वह असत् है। फिर भी लोग इन दोनों को एक मानते हैं। इससे बढ़कर अज्ञान और किसे कहा जाए? – श्रीशंकराचार्य

प्राच्य-पाश्चात्य मनीषियों की दृष्टि में भारत

अहो अमीषां किमकारि शोभनं
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः।।२१।।
किं दुष्यकरैर्नः क्रतुभिर्तपोव्रतै
र्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना।
न यत्र नारायणपादपङ्कज
स्मृतिः प्रमृष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात्।।२२।।
कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्
क्षणायुषां भारतभूजयो वरम्।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः
संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः।।२३।।
(श्रीमद्भागवत् ५/१९/२१-२३)

– अर्थात् देवता भी भारतवर्ष में उत्पन्न हुए लोगों के भाग्य की सराहना करते हुए कहते हैं कि जिन जीवों ने भारत में भगवान की सेवा के योग्य मनुष्य जन्म प्राप्त किया है, उन्होंने बड़ा पुण्य किया है या इन पर स्वयं हरि ही प्रसन्न हो गये हैं। इस परम सौभाग्य के लिए हम भी तरसते हैं। हमें बड़े कठोर यज्ञ, तप, व्रत, दानादि करके जो यह तुच्छ स्वर्ग का अधिकार प्राप्त हुआ है, इससे क्या लाभ है? यहाँ तो इन्द्रियों के भोगों की अधिकता के कारण स्मृतिशक्ति छिन जाती है, कभी श्रीनारायण के चरणकमलों की स्मृति होती ही नहीं। यज्ञ स्वर्ग तो क्या – जहाँ के निवासियों की एक-एक कल्प की आयु होती है, किन्तु फिर संसार चक्र में लौटना पड़ता है, उन ब्रह्म लोकादि की अपेक्षा भी भारत भूमि में थोड़ी आयुवाले होकर जन्म लेना अच्छा है। क्योंकि यहाँ धीर पुरुष एक क्षण में ही अपने मर्त्य शरीर से किये हुए सम्पूर्ण कर्म श्रीभगवान को अर्पण करके उनका अभय पद प्राप्त कर सकता है।

जहाँ भगवत कथामृतसरिता नहीं बहती, जहाँ उसके उद्गम स्थान भगवद् भक्त साधुजन निवास नहीं करते और जहाँ नृत्य गीतादि के साथ समारोहपूर्वक यज्ञ-पुरुष की पूजा नहीं की जाती, वह चाहे ब्रह्मलोक ही क्यों न हो, उसका सेवन नहीं करना चाहिए।

जिन जीवों ने इस भारत में ज्ञान तदनुकूल कर्म तथा उस कर्म के उपयोगी द्रव्यादि सामग्री से सम्पन्न मनुष्य जन्म पाया है, वे यदि आवागमन के चक्र से निकलने का प्रयत्न नहीं करते, तो व्याध की फाँसी से छूटकर भी फलादि के लोभ से उसी वृक्ष पर विहार करनेवाले वनवासी पक्षियों के समान फिर बन्धन में पड़ जाते हैं।

एनी बेसेंट

'क्या आप बतायेंगी कि विश्व के पुराने और नए देशों में भारत का वैशिष्ट्य क्या है?' वे बोलीं – भगवान ने भारत को दिया, वह किसी भी देश को नहीं दिया, किन्तु जो दूसरों को दिया, वह सब भारत को दिया है। परमेश्वर ने यूनान को सौन्दर्य, रोम को विधि, इस्राइल को मजहब और भारत को ऐसा धर्म प्रदान किया है, जिसमें समस्त सृष्टि का योग-क्षेम और प्राणिमात्र को धारण करने की शक्ति है। सौन्दर्य, विधि, न्याय, पंथ-सम्प्रदाय, कर्मकाण्ड, वाङ्मय, आदर्श, मर्यादा सब कुछ उस धर्म में समाहित हैं। इसलिए यदि कोई समस्त संसार में ईश्वरीय देन को किसी एक भूमि पर पूंजीभूत देखना चाहता है, तो उसे भारत की धरती पर जाना ही होगा।

मैक्समूलर

यदि कोई मुझसे पूछे कि इस आकाश के नीचे वह स्थान कौन-सा है, जहाँ मानव मानस का अपूर्व, अलौकिक और पूर्ण विकास हुआ है, जहाँ मानव जीवन की गहनतम गुत्थियों को सुलझाया और समाधान प्रस्तुत किया गया है, प्लेटो और कांट के भक्त भी जिसकी प्रशंसा किए बिना नहीं रहेंगे, तो मैं असंदिग्ध रूप से कहूँगा कि वह स्थान भारत है। यदि कोई मुझसे पूछे कि वाङ्मय प्रदान करनेवाला कौन-सा देश है, जो हमारे अन्तर्मन को और जीवन को पूर्ण, सर्वव्यापी और मानवीय बनाता है, जो जीवन का भौतिक रूप ही नहीं निखारता, बल्कि उसे अनादि, अनन्त और सनातन जीवन में रूपान्तरित भी कर देता है, तो मैं पुनः भारत की ओर ही संकेत करूँगा।' ○○○

संकलन : श्रीमती चन्द्रिका झा

गीतातत्त्व-चिन्तन (७)

दशम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे । उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है । ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था । अब प्रस्तुत है १०वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः।।२४।।

पार्थ (हे अर्जुन !) माम् (मुझको) पुरोधसाम् (पुरोहितों में) मुख्यं बृहस्पतिम् विद्धि (प्रमुख बृहस्पति जान) अहम् सेनानीनाम् स्कन्दः (मैं सेनापतियों में स्कन्द) च (और) सरसाम् सागरः अस्मि (जलाशयों में समुद्र हूँ)।

''हे अर्जुन ! मुझको पुरोहितों में प्रमुख बृहस्पति जान, मैं सेनापतियों में स्कन्द और जलाशयों में समुद्र हूँ।''

– अर्जुन, किसी को पुरोहित पसन्द है। यदि तू पुरोहितों का ध्यान अपने मन में करना चाहे, तो फिर पुरोहितों में तू आचार्य बृहस्पति के रूप में मुझे जान, जो देवताओं के पुरोहित हैं। जो पुरोहितों में मुझे प्रधान पुरोहित मान ले, तो वह मेरी ही विभूति है। बृहस्पति के रूप में मेरा चिन्तन किया जा सकता है। अगर कोई वीरों का ध्यान करना चाहे, क्योंकि कोई-कोई योद्धाओं को पसन्द करते हैं। ऐसे लोग शूर-वीरों को ही अपना आदर्श मानते हैं। तो कहा – **सेनानीनामहं स्कन्दः** – ऐसे कई होते हैं, जिन्हें सेनापति प्रिय होते हैं। उनमें शूरता का भाव होता है। तो प्रभु कहते हैं कि सेनापतियों में मैं स्कन्द हूँ, कार्तिकेय हूँ, जो देवताओं के सेनापति हैं। यहाँ कहते हैं कि देवताओं के सेनापतियों के रूप में कोई मेरा चिन्तन कर सकता है।

सागर पर ध्यान : मनःसंयम का उपाय

सरसामस्मि सागरः – जितने भी जल के आशय हैं, जलाशय हैं, जलराशि के आगार हैं, जैसे तालाब, पोखर इत्यादि, उनमें मैं सागर हूँ। सागर के रूप में मेरा चिन्तन किया जा सकता है। मैंने बम्बई में कई लोगों को समुद्र के किनारे बैठे देखा है। एक बार एक से पूछा कि इस तरह सागर का चिन्तन करने से कुछ लाभ होता है। तो उसने हामी भरी थी। उसने बताया था कि मैं जब सागर के किनारे बैठकर बारम्बार आती हुई लहरों को देखता हूँ, तो इसकी तुलना अपने मन में उठनेवाली वृत्तियों से करता हूँ और ऐसा करने से मेरा मन भी शान्त-गम्भीर हो जाता है। मनरूपी सागर में भी नित्य वृत्तिरूपी लहरें उठा करती हैं। जब बाहर सागर की लहरों को देखा जाता है, तो अन्दर की मनरूपी लहरें शनैः-शनैः शान्त हो जाती हैं। यह बड़ी मनोवैज्ञानिक बात है और अनुभव करने की चीज है। यह बात तर्क से सिद्ध नहीं होती। तर्क से तो उसे हम यह पूछेंगे कि भाई, तू तो बाहर में लहरों को उठता देख रहा है, तो उससे तेरे भीतर की लहरें कैसे शान्त होंगी? इसका उत्तर है, यह करके देखने की चीज है। वह आँखों को खुली रखकर लहरों का उठना और गिरना देख रहा है। सागर में कभी तरंगें समाप्त नहीं होतीं। उस पर एक सुभाषित भी बना हुआ है, जिसमें व्यासदेव कहते हैं -

स इच्छति हरिं स्मर्तुं व्यापारान्तगतैरपि।
समुद्रे शान्तकल्लोले स्नातुमिच्छति दुर्मतिः।।

कुछ लोग कहते हैं कि जीवन के हमारे जो काम हैं, वे जब समाप्त हो जाएँगे, तब हम ईश्वर का भजन करेंगे। इस पर तर्क यह है कि जो ऐसा सोचता है कि जिस समय जीवन के सारे कार्य समाप्त हो जाएँगे, तब मैं भगवान का चिन्तन करूँगा, साधना करने बैठूँगा, तो वह उस दुर्मति के समान है, वह उस मूर्ख के समान है, जो सागर के किनारे खड़ा होकर यह सोच रहा है कि जिस समय लहरें शान्त

हो जाएँ, उस समय मैं स्नान करूँगा। सागर की लहरें कभी शान्त नहीं होतीं। अगर वह सोचे कि सागर की लहरें शान्त होने पर वह स्नान करेगा, तो उसका फिर स्नान होने से रहा। ठीक उसी प्रकार जो सोचता है कि संसार के झमेले जब पूरे हो जाएँ, तो मैं ध्यान-भजन में मन रमाऊँ, तो वह शुभदिन अनन्त काल तक कभी आता ही नहीं।

एक अन्य समय एक संन्यासी के मुख से मैंने सुना था कि अगर चित्त की वृत्तियों को शान्त करना हो, तो सागर पर चिन्तन करना बड़ा लाभदायक होता है। सागर की ओर देखना ध्यान का एक प्रकार है। इसलिए प्रभु अर्जुन से सागर को अपनी विभूति कहते हैं।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।।२५।।

अहम् (मैं) महर्षीणाम् (महर्षियों में) भृगुः (भृगु) गिराम् (शब्दों में) एकम् अक्षरम् (ॐ) (एक अक्षर अर्थात् ओंकार) अस्मि (हूँ) यज्ञानाम् जपयज्ञः (यज्ञों में जपयज्ञ) स्थावराणाम् हिमालयः अस्मि (स्थिर वस्तुओं में हिमालय पहाड़ हूँ)।

''मैं महर्षियों में भृगु, शब्दों में ओंकार, यज्ञों में जपयज्ञ और स्थिर वस्तुओं में हिमालय पहाड़ हूँ।''

प्रभु ने कहा कि महर्षियों में मैं भृगु हूँ। ऋषि किसे कहते हैं? जो मन्त्रद्रष्टा होते हैं। माने जिन्होंने मन्त्रों को देखा है, उनको ऋषि कहते हैं। अब मन्त्रों को देखना कैसे? थोड़ा-सा इसे वैज्ञानिक दृष्टि से समझ लेते हैं। जैसे आइन्स्टीन को हम बहुत बड़ा वैज्ञानिक मानते हैं और ऐसा कहते हैं कि विज्ञान के क्षेत्र में आइन्स्टीन ने बड़े सूक्ष्म आविष्कार किये। उन्होंने ऐसे सूत्र निकाले, जो कुछ ही इने-गिने वैज्ञानिकों की समझ में आते हैं। आइन्स्टीन से पूछा गया कि आपने इन सूत्रों का किस तरह आविष्कार किया या जो समीकरण बनाया, वह सब कैसे बनाया? तब उन्होंने उत्तर दिया – चिन्तन की गहरी अवस्था में अचानक मुझे ऐसा दिखा, मन में ऐसा दिखा, उसको मैंने तुरन्त लिख लिया। बाद में मैंने जाँच करके देखा कि वह बिल्कुल ठीक है। उनका यह जो मन में देखने की प्रक्रिया है, उसे उन्होंने कहा – Intuitional Flights. पवित्रता के कारण जब मन सूक्ष्म हो जाता है, तब सूक्ष्म होने के बाद मन की उड़ान में या अन्तःकरण की उड़ान में ये सूत्र मुझे दीखे। उसे उन्होंने लिख लिये। जाँच करने के बाद ये बातें उन्हें सही मालूम हुईं। ठीक इसी प्रकार ऋषिगण भी मन्त्रों के द्रष्टा होते हैं, वे मन्त्रों को देखते हैं। वेद में जो मन्त्र और ऋचाएँ हैं, ऋषिगण उन्हें देखते हैं। जब वे गहरे ध्यान में निमग्न रहते हैं, तब उनको यह दर्शन प्राप्त होता है। कहा जाता है कि विश्वामित्र गायत्री-मन्त्र के ऋषि हैं। इसका क्या अर्थ हुआ? जैसे कोई कविता लिखता है, इस प्रकार से विश्वामित्र ने गायत्री मन्त्र नहीं लिखा था। बल्कि जब वे ध्यान में तन्मय थे, तब ध्यान की तन्मयावस्था में एक मन्त्र कौंधा, उसे उन्होंने पकड़ा। इसी तरह मन्त्रों को देखनेवालों को हम ऋषि कहते हैं। जो अधिक संख्या में मन्त्रों को देखते हैं, उनको महर्षि कहते हैं। यह ऋषि और महर्षि का अन्तर है।

भृगु ऐसे ही एक महर्षि थे। भृगु बड़े प्रसिद्ध ऋषि थे। उनकी तीनों लोकों में गति थी। वे जहाँ मन चाहे गमन कर सकते थे। कथा ऐसी चलती है कि महर्षियों में प्रश्न उठा कि महर्षियों में भृगु को प्रथम स्थान क्यों दिया जाता है? इस सम्बन्ध में भागवत में एक कथा आती है। प्रश्न यह था कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश में सर्वश्रेष्ठ देवता कौन हैं? अब इसकी जाँच कौन करे? भृगु ने कहा कि मैं इसकी जाँच करके आता हूँ। भृगु के सम्बन्ध में आता है कि वे स्वयं ब्रह्मा के पुत्र हैं। ये जाते हैं ब्रह्मा के पास। उनके पास जाते हैं और इन्होंने पिता को प्रणाम भी नहीं किया। पुत्र की अविनय देखकर ब्रह्मा रुष्ट होते हैं और सोचते हैं कि क्यों न इसे शाप ही दे डालूँ। न इसने प्रणाम किया और न ही अभिवादन किया। तो गुस्से के कारण उनका चेहरा तमतमा जाता है। भृगु ने पिता को अत्यन्त क्रोधित देखा और वहाँ से वे चले गये। कथा इस प्रकार कहती है कि वे रुद्र के पास आए। जब भगवान शंकर ने महर्षि भृगु को अपने पास आते देखा, तो वे आदर-सत्कार करने के लिए खड़े हो जाते हैं। पर भृगु उनकी तरफ देखते ही नहीं हैं और अन्यमनस्क हो वहाँ से चल दिये, मानो उन्होंने भगवान शंकर को देखा ही नहीं। तो शंकर कुपित होते हैं और मारने के लिए उद्यत होते हैं। पार्वतीजी हाथ रोक लेती हैं। कहती हैं कि आप क्यों अपने सिर ब्रह्म-हत्या का दोष लेते हैं। भृगु ने देखा कि शंकर भी अत्यन्त कुपित हो गये हैं। अब आए विष्णुलोक में। आकर देखा कि शेषशय्या पर विष्णु सोए हुए हैं। अचानक भृगु ने विष्णु के हृदय में एक लात मारी। जब लात पड़ी, तो तुरन्त भगवान विष्णु की निद्रा भंग हुई। उठकर दोनों हाथ जोड़कर क्षमा-याचना करते हैं कि महाराज, मुझसे बड़ी भूल हुई। आपके आगमन

का मुझे पता नहीं था। इसी से मुझसे अविनय हो गया और मैं सोता रहा। आपने कृपा करके मुझे जगा दिया। आप मेरी इस भूल को क्षमा कर दीजिए। स्वयं भगवान विष्णु क्षमा माँगते हैं और महर्षि भृगु हँसते हुए वहाँ से चले जाते हैं। जाकर तीनों घटनाएँ महर्षियों के सामने रख देते हैं। कथा कहती है कि तीनों में से भगवान विष्णु ही सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुये। इसके पीछे तत्त्व की बात यह है कि महर्षि भृगु ने भगवान विष्णु के वक्षस्थल पर ही क्यों लात मारी? इस पर कई व्याख्याकारों ने विभिन्न मत दिये हैं। कहते हैं सिर पर लात मारना तो अनुचित होगा। अच्छा, चरण में यदि लात मार देते, तो वहाँ से तो साक्षात् गंगा निकली है। तो भगवान विष्णु के चरण में तो लात मारी नहीं जा सकती। वह तो गंगामाता की अवहेलना होगी। इसीलिए भृगु ने वहाँ लात नहीं मारी। अब वक्ष में क्या है? भगवान विष्णु के वक्ष में लक्ष्मीजी निवास करती हैं। लक्ष्मी धन की देवी हैं। ये ऋषि हैं, इनको धन से क्या प्रयोजन है ! इसीलिए ऐसा स्थान देखकर उन्होंने वहाँ लात मारी। इसे व्याख्याकारों की कल्पना कह लीजिए या समाधान। जो भी हो, भृगु यह जाँच करके आते हैं कि इन त्रिदेवों में बड़े कौन हैं। वे कहते हैं कि भगवान विष्णु सर्वश्रेष्ठ हैं, क्योंकि उनमें इतना सात्त्विक भाव है कि उनमें क्रोध आने की बात तो दूर, भगवान ने मुझ अपराधी से ही क्षमा माँगी, जो गलती उन्होंने की ही नहीं। यह कथा है। तो महर्षियों में प्रभु ने भृगु को अपनी विभूति बताया।

ॐ शब्द का दर्शन

फिर कहा – **गिरामस्म्येकमक्षरम्** – मैं वाणी में एक अक्षर ॐ हूँ। जिसे हम प्रणव कहते हैं। यदि तू वाणियों में मेरी विभूति देखना चाहे, तो ॐ है। जितने भी शब्द निकले हैं, वे सब ॐ से ही निकले हैं। जितनी ध्वनियाँ निकली हैं या ध्वनि की सारी प्रक्रिया इस एक ॐ में समाहित हो जाती है। ॐ तीन अक्षरों से बना है – अ, उ और म। जब हम किसी भी प्रकार की कोई ध्वनि करते हैं, कोई भी ध्वनि हो, यदि कोई प्राणी भी कोई ध्वनि करे, तो वह ध्वनि गले से ऊपर की ओर आती है। जैसे हमने कहा – अ – तो यह कहने से यह ध्वनि गले से ऊपर की ओर आ रही है। जब हम उ कहते हैं तो मानो ध्वनि तालु से आकर लुढ़कती हुई मुँह की ओर आती है और म कहने से हमारे दोनों ओंठ बन्द हो जाते हैं। इस प्रकार अ, उ और म कहने से मानो ध्वनि की एक प्रक्रिया पूरी हो जाती है। ॐ का ठीक-ठीक उच्चारण करने से मानो ध्वनि की एक प्रक्रिया पूरी हो जाती है। ॐ मानो ध्वनि की प्रक्रिया को व्यक्त कर देता है। इसीलिए भगवान ने कहा है कि वाणियों में यदि मेरी विभूति को देखना चाहते हो, तो मैं ॐ में स्थित हूँ। ॐ तो फिर प्रणव है, जिसके पीछे एक बहुत बड़ा दर्शन है। भगवान कहते हैं कि वाणी की प्रक्रिया का द्योतक यदि कोई शब्द है, तो वह यह ॐ ही है।

किसी को यज्ञ में रुचि हो, तो मैं उन सभी यज्ञों में मैं जपयज्ञ हूँ – अर्थात् भगवान का नाम लेते हुए जो यजन करना है, वह यज्ञों में श्रेष्ठ है। स्थावरों अर्थात् अचलों में मैं हिमालय हूँ – **स्थावराणां हिमालयः।** हिमालय के समान स्थावर और कहाँ दिखेगा! कितने मीलों फैला हुआ, सबसे ऊँचाई तक जिसका विस्तार है। तो स्थावरों में मेरी विभूति है – हिमालय।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः।।२६।।

सर्ववृक्षाणाम् (सब वृक्षों में) अश्वत्थः (पीपल) देवर्षीणाम् नारदः (देवर्षियों में नारद) गन्धर्वाणाम् चित्ररथः (गन्धर्वों में चित्ररथ) च सिद्धानाम् कपिलः मुनिः (और सिद्धों में कपिल मुनि हूँ)।

''सब वृक्षों में पीपल, देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि हूँ।''

यदि कोई वृक्षों में मेरा ऐश्वर्य देखना चाहे, तो मैं उनमें अश्वत्थ या पीपल हूँ। यहाँ गीता में भी आपको मिलेगा – यह जो संसार है, यह भी तो एक वृक्ष है। जैसे वृक्ष एक छोटे-से बीज से आरम्भ होता है और वह कितना महान वृक्ष हो जाता है एवं फिर उससे कितने ही बीज हो जाते हैं। एक बीज कितने बीजों को जन्म देता है। एक अत्यन्त छोटा-सा, एक राई के दाने के समान बीज इतने विशाल अश्वत्थ वृक्ष को जन्म देता है और अपने समान अनन्त बीजों को जन्म देकर स्वयं नष्ट हो जाता है। ठीक इसी प्रकार यह संसार भी है। संसार की उपमा इस अश्वत्थ वृक्ष से दी गई है। पन्द्रहवें अध्याय में उसका वर्णन आएगा। यहाँ भगवान कहते हैं, अगर वृक्षों में मेरी विभूति देखना है, तो अश्वत्थ का वृक्ष ही मेरी विभूति है। अश्वत्थ में एक गुण भी है। कहते हैं कि जो लोग उसकी छाँह में बैठते हैं, उनको यक्ष्मा (टी. बी.) की बीमारी नहीं सताती। पता नहीं कहाँ तक सच है,

पर आयुर्वेद की ऐसी मान्यता है।

देवर्षि और महर्षि का अन्तर

देवर्षियों में मैं नारद हूँ। अब देवर्षि और महर्षि में क्या अन्तर है? देवर्षि भी महर्षि ही होते हैं। पर दोनों में अन्तर इतना ही है कि देवर्षि देवलोक में भी चले जाते हैं। वैसे तो कहा जा सकता है कि भृगु भी तो चले गये थे। पर दोनों में जो सूक्ष्म अन्तर यह है कि ये महर्षिगण केवल मनुष्यों के बीच में विचरण कर सकते हैं और देवर्षि देवलोक में भी विचरण कर सकते हैं। नारद के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उनकी देवलोक में अबाध गति है। कहीं उनको कोई रोकता नहीं। इसलिए वे देवर्षि हैं। बस इतना ही सूक्ष्म अन्तर है। देवर्षि भी महर्षि के ही समान हैं। परन्तु देवर्षि की गति मनुष्यलोक और देवलोक में समान है। भगवान कह रहे हैं कि देवर्षियों में मेरी विभूति नारद के रूप में ही है। नारद का गुणगान कहाँ तक गाया जाए ! वे अद्‌भुत देवर्षि हैं। लोगों को भगवान की भक्ति सिखाते हैं। सदा विचरते ही रहते हैं और लोगों का उद्धार करते हैं। अज्ञान-तिमिर का नाश करना ही देवर्षि का व्रत है। बहुत-से लोग कहते हैं कि ये झगड़ा करा देनेवाले देवर्षि हैं। जहाँ पर शान्ति हो, वहाँ पर जाकर झगड़ा रमा देते हैं। उनका चित्रण भी उसी प्रकार किया जाता है। परन्तु यह देवर्षि का सरासर गलत चित्रण है। देवर्षि तो ऐसे हैं कि जहाँ पर झगड़ा हो, वे उसे मिटा देते हैं। यदि झगड़ा भी कराते हैं, तो एक उद्देश्य से कराते हैं। जिस उपाय से भगवान की ओर मति हो जाए, इस उद्देश्य से झगड़ा-बखेड़ा खड़ा कर देते हैं। यह देवर्षि का गुण है। उसके लिए उदाहरण दिये जा सकते हैं। पर अभी वह प्रसंग नहीं है। **गन्धर्वाणां चित्ररथः** – गन्धर्वों में मैं चित्ररथ नाम का गन्धर्व हूँ। जो ये सब ललित विद्याएँ हैं, जैसे नृत्य, संगीत इत्यादि, उन विद्याओं में गन्धर्व विशारद होते हैं। यह ललित विद्या गन्धर्वों में फैली। जो गन्धर्वों की उपासना करते हैं, तो भगवान का कहना है कि उन गन्धर्वों में वे चित्ररथ नामक गन्धर्व की उपासना करें, क्योंकि वह मेरी विभूति है। जो लोग इन ललित विद्याओं में पारंगत होना चाहते हैं, वे गन्धर्वों को पूजते हैं। इसीलिए भगवान का कथन है कि उन गन्धर्वों में सर्वश्रेष्ठ चित्ररथ नामक गन्धर्व की ही उपासना करना समीचीन होगा, क्योंकि इस उपासना के द्वारा भी वे धीरे-धीरे मुझे ही प्राप्त होंगे। यह भगवान का तात्पर्य है। ये गन्धर्व भी मनुष्य-कोटि के ही हैं। जैसे यक्ष-राक्षस इत्यादि होते हैं। हम पढ़ते हैं कि जिस समय अर्जुन आदि भ्रमण कर रहे थे, तो उनका विवाह नागवंशी-कन्या उलुपी से हुआ था। कहने का तात्पर्य यह है कि इन मनुष्य योनियों का वर्णन महाभारत समय में भी आता है। फिर भगवान ने कहा – **सिद्धानां कपिलो मुनिः** – यदि सिद्धों को देखना है, तो उनमें मैं कपिल मुनि हूँ। कपिल मुनि ने सांख्यदर्शन का प्रारम्भ किया। ऐसा कहा जाता है कि दर्शन की प्रणाली ही कपिल मुनि ने आरम्भ की। दार्शनिक विवेचना-दर्शन की पद्धति के जन्मदाता तपस्वी कपिल मुनि ही हैं। अत्यन्त तपस्वी थे। सिद्धों में कपिल मुनि को प्रभु ने अपनी विभूति स्वीकार किया है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ३० का शेष भाग

जब दशरथ जी ने कहा कि – आप क्या कर रहीं हैं? कैकेयी बोली कि बस, कौशल्या ने मेरा भला ही देखा है, आप यही तो कह रहे हैं न ! तो मैं भी उनका वैसे भला करूँगी –

जस कौसिलाँ मोर भल ताका।
तस फलु उन्हिं देऊँ करि साका।। २/३२/८

मैं सवाया करके दूँगी, बराबर देना तो साधारण व्यवहार है। उसने जैसा मेरे साथ व्यवहार किया है, उसका सवाया व्यवहार करूँगी। उसका अभिप्राय यह है कि जहाँ क्रिया है, वहाँ अपने-पराए का भेद है और जहाँ पर अपने-पराए का भेद है, वहाँ पर अच्छे व्यवहार के साथ-साथ बुरे व्यवहार की भी सम्भावना है। किन्तु जिस व्यवहार का आधार यह होगा कि सब भगवान के ही रूप हैं, इसलिए सबसे अच्छा व्यवहार करना है, वहाँ पर व्यक्ति के व्यवहार में भिन्नता नहीं आयेगी। जहाँ पर यह वृत्ति आयेगी कि यह पराया तो है, पर हम पराए से भी अच्छा व्यवहार करेंगे। जब तक द्वैत नहीं मिटेगा, जब तक भेद बुद्धि नहीं मिटेगी, तब तक रामराज्य की स्थापना नहीं होगी। अविद्या के रूप में यह मन्थरा मैं-मेरा, तू-तेरापन को उत्पन्न कर देना चाहती है। यही भरत और राम में दूरी उत्पन्न करने की, व्यवधान उत्पन्न करने की चेष्टा करती है। अभिप्राय यह है कि भरत और राम अभिन्न हो जायें, दोनों में अद्वैत की स्थिति उत्पन्न हो जाय, दोनों में ऐक्य की स्थिति हो जाय।

बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय।। **(क्रमशः)**

सुख सुविधाओं में नहीं, भगवान के नाम में है

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छत्तीसगढ़)

महापुरुषों ने कहा है – तुम्हारा शरीर नया है, पर मन पुराना है। इसलिये इसमें अनन्त जन्मों के संस्कार हैं। पिछले जन्म में जो किया है, वे विचार इस जन्म में मन में आते हैं। पूर्व जन्म के अनुसार इस जन्म में वैसी परिस्थिति हमें मिली है। इसलिए इस जन्म के बातों की ओर ध्यान देना चाहिए। मन है, तो मन में इच्छायें रहेंगी ही, लेकिन हमारी इच्छायें अच्छी हैं या बुरी, ये सोचने के लिये भगवान ने हमें विवेक-बुद्धि दी है। अच्छे-बुरे का ज्ञान रखना, इसको विवेक कहते हैं। विवेक हमें चैतन्य से जोड़ता है। अपने आप को जानने के लिए मन को अन्तर्मुख करना पड़ेगा। यदि हमारी समझ में आ जायेगा कि जगत बंधन का कारण है, तो झट से हम विवेक का सहारा लेकर उसे छोड़ देंगे। जब उस विवेक-बुद्धि से संसार में रहकर भी हमारा मन भगवान में रम जायेगा, तभी हमारे दुखों का अन्त होगा। जब तक भगवान में हमारा मन नहीं लगेगा, तब तक दुखों का अन्त नहीं होगा। हम सोचते हैं कि सुविधाओं में सुख है, पर सुविधाओं में सुख नहीं है। सुख है भगवान के नाम में। सामान्यत: मन इधर-उधर भागता है, तो उसे अच्छी तरह से देखकर भगवान के नाम-कीर्तन, स्मरण, कथा-कीर्तन और जप-ध्यान में लगाना चाहिए। परिस्थितियों से घबराएँ नहीं। मन को सुधारने के लिये यह मन्त्र है कि 'यह भी नहीं रहेगा'। पर एक दिन मैं भी नहीं रहूँगा, यह भी ध्यान रखो, मृत्यु का स्मरण रखो। यह संसार क्षणभंगुर है। सभी चीजें समाप्त होंगी। मैं संसार के बाहर नहीं हूँ, तो मेरा शरीर भी क्षणभंगुर है। केवल मेरी आत्मा नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-चैतन्यस्वरूप है, यही शाश्वत सनातन है। इसलिये सतत आत्मा में प्रतिष्ठित रहने का प्रयास करो। आत्मा का चिन्तन करो। भगवान का चिन्तन करो। जैसे आकाश विशाल है। आकाश की एक ही स्थिति है। वैसे ही भगवान हैं, ऐसा दृढ़ विश्वास रखो। भगवान को जानने के लिये उनमें दृढ़ विश्वास चाहिए। भगवान असीम, अनन्त, अनादि हैं। ठीक वैसे ही हमारी आत्मा अनादि और अनन्त है।

हम अपने मन के कारण ही संसार में पड़े हैं। आचार्य कहते हैं – मन के कारण ही जन्म-मरण के चक्र में पड़े हो। जन्म-मरण का कष्ट सबसे बड़ा कष्ट है। इसलिए जन्म-मरण के कष्ट से मुक्ति पाओ। इसलिए गुरु द्वारा निर्देशित साधना करो और उनके उपदेशों का आचरण करो। साधना के समय जब-जब संसार के प्रति आकर्षण हो, तब-तब भगवान से प्रार्थना करो।

प्रार्थना कहाँ से आरम्भ करें। प्रार्थना अपने इष्ट से, उनके नाम-गुणगान से आरम्भ करें। अपनी भाषा में, अपने शब्दों में भगवान से प्रार्थना करें, क्योंकि प्रार्थना में बहुत बड़ी शक्ति है। भगवान से प्रार्थना नाम-जप से अधिक फलदायी है। उस समय यह देखने का प्रयत्न करें कि मैं जिनसे प्रार्थना कर रहा हूँ, वे प्रभु मेरे हृदय में विराजमान हैं। मेरे प्रभु, इष्ट ज्योतिर्मय, चैतन्य-स्वरूप, आनन्दस्वरूप हैं, ऐसा चिन्तन करें।

भगवान से शरणागत होकर साधना में मग्न रहें। अपनी आत्मा में ही जो संतुष्ट है, वही आनन्द में रह सकता है। इसके बाद सत्संग करें, सद्ग्रंथ पढ़ें, विपरीत चर्चा से बचें। किसी भी प्रकार से सदा भगवान का चिन्तन-मनन करते रहें।

सदा यह सोचें कि मैं अकेला नहीं हूँ। जब मेरे प्रभु मेरे साथ ही हैं, तो मैं क्यूँ इधर-उधर जाऊँ? आवृत्ति से स्मृति और आवृत्ति न करने से विस्मृति होती है। हम विषयों को याद करते हैं और भगवान को भूल जाते हैं। जबकि हमें सांसारिक विषयों को भूलकर भगवान को याद करना चाहिए। इसके लिए बार-बार सत्संग करें। इस प्रकार भगवान के नाम की आवृत्ति करते-करते रूप की याद आती है। भगवान के रूप का दर्शन होने लगता है।

साधक के जीवन में सावधानी और साधना की बहुत आवश्यकता है। यह कब तक करें? जब तक जीयें, तब तक करें। जीवन में भगवान से सुगमता से जुड़ने और शान्ति से रहने की यह सरल पद्धति है। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (७३)

स्वामी भूतेशानन्द

(४९)

प्रश्न – महाराज ठाकुर एक स्थान पर कह रहे हैं – भक्त का लक्षण है, गुरु से उपदेश प्राप्त कर स्थिर, अविचल होकर रहता है। भक्त स्थिर, अविचल होकर रहता है, इससे ठाकुर क्या समझा रहे हैं?

महाराज – स्थिर रहता है अर्थात् उसमें निष्ठा, विश्वास करके रहता है, चंचल नहीं होता है।

– और एक बात कह रहे हैं – भक्त की धारणा-शक्ति होती है।

महाराज – तत्त्व के सम्बन्ध में दृढ़ निश्चय होना, संशयरहित होना, यह धारणा है। जिसे समझ कहते हैं, वह भी हो सकता है। केवल सुनने से नहीं होगा, धारणा होनी चाहिए। श्रवण-मनन-निदिध्यासन – सुनना होगा, उस सम्बन्ध में चिन्तन-मनन करना होगा और उसके बाद चिन्तन-मनन, विचार के द्वारा जो निर्णय हुआ, उस पर दृढ़ रहना होगा।

– धारणा का अर्थ यहाँ तीनों में कोई एक या तीनों ही है?

महाराज – धारणा अर्थात् संशयरहित होना।

– वह निदिध्यासन के बाद ही संशयरहित होगा, उसे कह रहे हैं क्या? या श्रवण-मनन-निदिध्यासन क्रम से होगा।

महाराज – हाँ, श्रवण, उसके बाद मनन, उसके बाद धारणा।

प्रश्न – महाराज ! शास्त्र में गुरु-सेवा की बात बहुत कही गयी है। हमलोगों का संघ अभी इतना बड़ा हो गया है कि हम सभी लोग गुरु को हमेशा अपने समीप नहीं प्राप्त कर रहे हैं।

महाराज – भीतर के गुरु को तो प्राप्त करोगे।

– उनकी सेवा किस प्रकार की जायेगी?

महाराज – उनके निर्देश-उपदेश को ठीक-ठीक पालन करके, उनके सम्बन्ध में संशयहीन होकर, श्रद्धावान होकर उनकी सेवा की जाती है। यही हुई ठीक-ठीक सेवा।

– ये सब गुरु-सेवा ही कहलायेगी?

महाराज – अवश्य। गुरु का चरण दबाकर बिल्कुल तोड़ दिया, ऐसा करने से नहीं होगा। (सभी हँसते हैं।) सभी प्रकार से सेवा होती है। बाह्य सेवा भी होती है और आन्तरिक सेवा भी होती है।

– संघ का जो कार्य हमलोग करते हैं, वह संघ की सेवा है। क्या वह सब भी गुरु-सेवा ही कही जायेगी?

महाराज – तुम सब गड़बड़ा दे रहे हो। अब गुरु सेवा से संघ-सेवा में आ गया !

– नहीं, पूछ रहा हूँ। हमलोग जो गुरु-सेवा नहीं कर पा रहे हैं, गुरु के समीप सेवा करने का सुअवसर नहीं मिल पा रहा है, उनके द्वारा संघ का कार्य या सेवा करने से क्या वह गुरु-सेवा होगी?

महाराज – गौण रूप से होगी।

– कैसे महाराज?

महाराज – गुरु और इष्ट एक हैं। संघ और इष्ट एक हैं। इस प्रकार गुरु और इष्ट, गुरु और संघ एक हो जा रहे हैं, ऐसा कह सकते हो। गौण रूप से होगी। गुरु के निर्देश को श्रद्धापूर्वक पालन करना, यह गुरु-सेवा होगी।

– वास्तव में, बाह्य रूप से गुरु-सेवा नहीं करने से ठीक-ठीक मन में संतोष नहीं होता, यही बात है !

महाराज – हाँ, वह तो है, शरत् महाराज उद्बोधन में रहते थे। यहाँ (मठ में) बीच-बीच में आते थे। जब वे आते थे, तो सभी लोग उनकी सेवा करने के लिए व्यग्र हो जाते। उनलोगों के साथ उनकी सेवा करने का अवसर मुझे नहीं मिलता था। जब वे भोजन के बाद विश्राम करते, तब मुझे अवसर मिलता। बहुत देर तक मैं मालिश कर रहा हूँ।

अन्त में वे कहते हैं – अब सहन नहीं हो रहा रे बाबा ! (सभी हँसते हैं।) अब सेवा का अत्याचार समझ रहे हो तो?

– जो भी हो, आपने महाराज की थोड़ी-सी भी सेवा की तो है।

महाराज – इतनी सी, बहुत कम।

– एक बार शंकरानन्द जी ने खिन्न होकर कहा था – सेवक नहीं, ये अत्याचारी हैं।

महाराज – हाँ, वे कहते थे। जो लोग उनकी सेवा करते थे, वे लोग भयाक्रान्त रहते थे। क्योंकि जैसा उनका उपद्रव था और जो सेवक थे उन सबका भी भय था। (सभी हँसते हैं)

– महापुरुष महाराज की आपने बहुत सेवा की है महाराज?

महाराज – क्या उसे सेवा कहते हैं? हाँ, एक प्रकार से कह सकते हो। हाथ-पैर दबाया हूँ। कमरा साफ किया हूँ। दवा लेने गया हूँ, डॉक्टर को बुलाने गया हूँ। यदि इसे सेवा कहो, तो कह सकते हो। लेकिन मैं सेवा किया हूँ, सोचने पर तो अहंकार होगा। अहंकार नहीं, सौभाग्य है। उमेश महाराज उनके सेवक थे, वे चले ही गये।

– क्यों महाराज?

महाराज – उनके मन में आया और वे चले गये।

– महाराज, शरत् महाराज जब उद्‌बोधन में थे, आपने वहाँ जाकर उनकी वैसी सेवा कभी की है?

महाराज – नहीं, वैसा अवसर नहीं मिलता था। वैसे वे बहुत सेवा नहीं लेते थे। सुयोग नहीं मिलता था। मठ में आने पर भोजन के बाद समय मिलता था। वे मठ में मीटींग (सभा) करने आते थे। बहुत व्यस्त रहते थे। अत: जब वे भोजन के बाद विश्राम करते थे, तभी जाकर उन्हें पकड़ता था।

– वे आने पर किस कमरे में रहते थे?

महाराज – ये महापुरुष महाराज के कमरे के कोने में।

– महापुरुष महाराज का जो कमरा था, उसके पास में क्या?

महाराज – महापुरुष महाराज के नहीं, स्वामीजी के कमरे के पास में। महापुरुष का कमरा तो अभी कार्यालय भवन के ऊपर है। इसके अतिरिक्त कमरा ऐसा था कि प्रसाधन हेतु उस छत को पार कर जाना पड़ता था। बड़ी परेशानी होती थी।

– हरि महाराज सेवकों से कहते थे – तुमलोग मेरे शरीर की सेवा करते हो, मैं तुमलोगों के मन की सेवा करता हूँ।

महाराज – किन्तु उस सेवा का अत्याचार सँभालना बहुत कठिन था। सभी भयभीत रहते थे ! क्रोधित होते ही सब भाग जाते थे। मठ के व्यवस्थापक प्रियदा महाराज थे। उठते-बैठते समय उनकी हड्डियाँ चटचट करती थीं।

– शब्द होता था क्या?

महाराज – हाँ, एक दिन हरि महाराज ने ऐसा डाँटा कि हड्डियों का शब्द बन्द हो गया। (सभी हँसते हैं)

– आप भी कभी-कभी वैसा डाँटते, तो अच्छा होता। हमलोगों का बहुत कुछ ठीक हो जायेगा।

महाराज – अरे बाबा ! मैं बूढ़ा हूँ। मुझे धक्का देने से ही मैं गिर जाऊँगा। मैं डाँटने जाऊँगा? (सभी हँसते हैं)

प्रश्न – स्वामीजी ने वेद-अध्ययन करने को कहा है। क्योंकि वेद पढ़ने से कुसंस्कार चला जायेगा।

महाराज – वेद सम्बन्धी कुसंस्कार जायेगा।

– वेद सम्बन्धी कुसंस्कार? इसका क्या अर्थ है?

महाराज – हमलोग 'वेद-वेद' कहते हैं, किन्तु उसमें क्या है, क्या नहीं है, हमलोग नहीं जानते। शुद्धानन्द स्वामी को एक व्यक्ति कह रहे हैं – 'वेद-वेदान्त पाय ना अन्त, घुरे मरे अन्धकारे।' अर्थात् वेद-वेदान्त उन परमात्मा का अन्त नहीं पाते, व्यक्ति अज्ञान में भटकते हुए मर जाता है। शुद्धानन्दजी ने कहा है, वेद-वेदान्त में क्या है, यही नहीं जानता है, 'वेद-वेदान्त पाय न अन्त' कह दिया। गीता में भगवान ने कहा है –

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।

न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति।।(१८/६७)

– क्यों यह बात कह रहे हैं? क्या सभी लोग भगवान की कथा नहीं श्रवण कर सकते हैं?

महाराज – उससे काम नहीं होगा। लाभ नहीं होगा। वे लोग उलटा विकृत अर्थ करेंगे। बाइबिल में लिखा हुआ है – **Do not cast pearls before swine** – सूअर के आगे मोती मत डालो। बेंतवन में मोती बिखेरने से कोई

लाभ नहीं होगा।

– तब वे लोग जानेंगे कैसे? उनके पास पहुँचेगा नहीं तो।

महाराज – जो श्रद्धावान नहीं है, उसके पास पहुँचने से कोई लाभ तो नहीं है। वे लोग तो श्रद्धावान नहीं हैं, वे लोग तो ग्रहण नहीं करेंगे।

– श्रद्धा उत्पन्न करने के लिये ही तो ये सारी व्यवस्था है।

महाराज – श्रद्धा उत्पन्न नहीं होगी। कहा जाता है – श्रद्धा नहीं होने से पढ़ने की प्रवृत्ति नहीं होगी। प्रवृत्ति नहीं होने से उसका अर्थ हृदयंगम नहीं होता। केवल समय नष्ट होगा और वे सब कहेंगे – यही तो, तुम्हारे भगवान की लीला है।

– किन्तु स्वामीजी कह रहे हैं, शास्त्र मठों, मन्दिरों और वनों में छिप गया था। इन सबको सबमें प्रसारित कर देना होगा। सबको सुनाना होगा।

महाराज – किन्तु भगवान पुन: कह रहे हैं – सबको सुनाया नहीं जायेगा या सुनाना नहीं चाहिए। गीता में कह रहे हैं। किसको नहीं सुनाया जायेगा? जो श्रद्धावान नहीं है, जिसने तपस्या नहीं की, जिसे सुनने में रूचि नहीं है। उसे नहीं सुनाया जायेगा। सब कुछ देखने के बाद तो कहोगे। केवल सुनाना मना किया गया है, यह बात नहीं है। इस स्तर के लोगों को सुनाने से कोई लाभ नहीं है। हमारे कालेज में उस समय बाइबिल अनिवार्य था। जो शिक्षक महोदय पढ़ाते थे, वे बिल्कुल श्रद्धाहीन थे। उनकी बाइबिल के प्रति तनिक भी श्रद्धा नहीं थी। ठाकुर की कृपा से हमारी बाइबिल पर भी श्रद्धा है। इसलिए उनका व्यंग्य देखकर मुझे बुरा लगता था। अब समझो, ऐसे अधिकारी के हाथों से पढ़ने से क्या दशा होती है।

– बंगाली शिक्षक महोदय पढ़ाते थे क्या?

महाराज – बंगाली तो थे ही।

– कोई साहब नहीं पढ़ाते थे?

महाराज – हमारे यहाँ (संस्कृत कॉलेज में) साहब प्रवेश ही नहीं कर पाते थे। साहब के आने पर तो गंगा जल छींटना पड़ता था। (सभी हँसते हैं)

– हिन्दू कॉलेज अर्थात् प्रेसीडेन्सी कॉलेज में साहब अध्यापक थे।

महाराज – प्रेसीडेन्सी कॉलेज में प्रधानाचार्य ही साहब थे।

– महाराज ! वे सब तो सबके हाथों में बाइबिल दे दे रहे हैं।

महाराज – जो लोग प्रचार करते थे, वे हिन्दू धर्म की आलोचना करते थे। जबकि हिन्दू धर्म के बारे में कुछ जानते नहीं थे। जिसके पास बोलते थे, वे लोग भी हिन्दू धर्म के बारे में कुछ नहीं जानते थे। किन्तु वे लोग मानते थे कि हमलोग हिन्दू हैं और वे म्लेच्छ हैं।

– कट्टरता भी है कि हम हिन्दू हैं और वे म्लेच्छ हैं !

महाराज – ईसाई लोग द्वार-द्वार पर, घर-घर में चले जाते हैं। किन्तु केवल चले जाने से तो नहीं होगा, जीवन के द्वारा जाना होगा।

– रामकृष्ण मिशन से बहुत-सी पुस्तकें नि:शुल्क वितरित की जा रही हैं।

महाराज – हमलोगों की जो आय हो रही है, उसमें से पैसा बचाकर अल्प-मूल्य किया जा रहा है। किन्तु अल्प-मूल्य करते समय ध्यान रखना होगा, जिससे क्षति न हो।

– आजकल स्वामीजी पर कई पुस्तकें, चित्र प्रकाशित किये गये हैं। वह सब बहुत उपयोगी हो रहा है।

महाराज – नहीं, नहीं, हमलोगों का एक सिद्धान्त है। इस प्रकार वितरित नहीं करना है। लोग नि:शुल्क पुस्तकें लेकर फेंक देंगे। प्रचार हो, किन्तु प्रचार करने के लिए उसकी पृष्ठभूमि की आवश्यकता है। वैसा करने से प्रचार नहीं होता, केवल पुस्तकें देने से प्रचार नहीं होता। पृष्ठभूमि की आवश्यकता पड़ती है।

– यानि जहाँ पुस्तक-वितरण किया जा रहा है या कम मूल्य में दिया जा रहा है, वहाँ एक सभा करके बताने से कुछ काम ठीक होगा।

महाराज – पादरी बोलते भी हैं। वे लोग कहते हैं – क्या तुम हमारे यिशु की कहानी जानते हो? एक व्यक्ति कुएँ में गिर गया था। राम गये, तो कुछ भी नहीं कर सके। कृष्ण गये, तो कुछ भी नहीं कर सके। यिशु - ईसा मसीह गये, तो उसे खींचकर बाहर निकाल दिये। (सभी हँसते हैं) **(क्रमश:)**

साधुओं के पावन प्रसंग (३७)

स्वामी बोधात्मानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

१२/०६/१९६०, बेलूड़ मठ

भव महाराज ने स्वयं कहा, ''देखो, आज दो-तीन दिन से एक बात सोच रहा हूँ। Man lives on past – generally on his undesirable past. (अर्थात् मनुष्य भूतकाल में रहता है – साधारणत: अपने अवांछनीय भूतकाल में।) मनुष्य को अतीत के परिवेश को लेकर समान्य रूप से जीवित रहना होता है। वह अतीत की घटनाओं को, भूलचूक को लेकर जुगाली करता रहता है।

ब्रह्मचारियों के साथ स्वामी बोधात्मानन्द जी महाराज

''ये जो माँ-बाप, भाई-बहन हैं, ये सब मनुष्य के लिए कितने प्रिय होते हैं। हमलोग पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। हमलोग इसके पूर्व कितनी बार माँ-बाप, भाई-बहन के बीच में जीवन व्यतीत कर आये हैं। इनमें से न तो कोई मेरे साथ आया है और न ही जायेगा। जहाँ पर जीव का संस्कार या वासनापूर्ण होगा, उसी प्रकार के माँ-बाप के पास जीव जन्म-ग्रहण करता है।

''हमलोगों का उद्देश्य है ईश्वर दर्शन। हमलोग जब अपनी वैसी भ्रमित पूर्वस्मृति और माँ-बाप की बातें सोचते रहते हैं, तभी ईश्वर चिन्तन में विघ्न होता रहता है।''

उन्हीं दिनों उन्होंने मुझसे कहा था, ''ठाकुर को अपना बना लो। दो नाव में पैर मत रखना। जो संन्यासी परिवारवालों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बनाए रखता है, वह अध्यात्म पथ में अधिक प्रगति नहीं कर पाता।''

इसी प्रसंग में उन्होंने मुझे एक घटना बताई थी, ''दो तालाब की खुदाई हुई – एक गंगा के तीर पर और दूसरा दूर में। दोनों की गहराई एक ही थी। ग्रीष्मकाल में दोनों तालाबों का जल सुख गया। दूर के तालाब की मिट्टी धूप से सुख गयी और उसमें दरारें पड़ गयी और गंगा के तीर के तालाब की मिट्टी नरम कीचड़ जैसी थी। दूर का तालाब वैराग्यवान संन्यासी का उदाहरण है और दूसरा आसक्तिपूर्ण संन्यासी का।''

भव महाराज ने मुझे अपने तपस्या-जीवन की एक घटना बतायी थी, ''एक बार ऋषिकेश में तपस्या कर रहा हूँ। एक दिन मन से जगत् अदृश्य हो गया। मैं समझ गया कि माया क्या है ! एक पत्थर के ऊपर बैठकर गंगा तीर पर ध्यान कर रहा था। मैं आनन्द से पत्थर के चारों ओर घूमकर उस पर मस्तक ठोकने लगा। यह जगत् जो मायामय है, उसे बहुत अच्छी तरह समझ गया।''

अलमोड़ा में रहते समय भव महाराज ने ब्रह्मचारी राम महाराज से स्वामीजी की यह स्मृति सुनी थी : ''एक दिन बेलूड़ मठ गया था। स्वामीजी अपनी बकरी 'मटरू' का दूध दूहेंगे। उसका थन बहुत नीचे होने के कारण स्वामीजी को बहुत असुविधा हो रही थी। उन्होंने मुझसे कहा, ''अरे बुद्धू! खड़े होकर क्या देख रहा है? इस बकरी का पीछे का दोनों पैर थोड़ा-सा ऊपर करके रखो।' मैंने वैसा-ही किया, दूध दूह रहे हैं – जैसा कि लोग पम्प करते हैं। मटरू को दूहने के बाद स्वामीजी ने कहा, ''क्यों रे ! तुमको बुद्धू कहा, इससे दुख तो नहीं हुआ? कुछ दुख मत करना। वह तो एक नाम मात्र है। देखो, इस जगत में नाम-रूप सब मिथ्या है। ब्रह्म ही एकमात्र सत्य वस्तु है।'''

भव महाराज एक बार वृन्दावन में तपस्या करने गये थे। उनके बगल के कमरे में स्वामी जगदानन्द जी रहते थे। सन्ध्या समय वे कई संन्यासियों को शास्त्र पढ़ाते थे। इससे भव महाराज को जप-ध्यान में असुविधा होने लगी। उनके द्वारा एक दिन जगदानन्दजी को यह बात बताने पर, उन्होंने तत्क्षण उत्तर दिया, ''इतने दिनों से क्यों नहीं कहा? मैं संन्यासी होकर एक संन्यासी के जप-ध्यान में विघ्न डालूँगा ! ऐसा क्या कभी होता है? भाई, तुम जप-ध्यान करो। मैं दूसरी जगह उनलोगों की कक्षा लूँगा।'' इन सब महान संन्यासियों का आचरण हमारे लिए अनुकरणीय है।

१९६४ ई. में बेलूड़ मठ में एक दिन शरत् महाराज के प्रसंग में स्वामी बोधात्मानन्द जी ने मुझे उनकी यह स्मृति सुनाई, ''एक बार एक बहुत आवश्यक पत्र लेकर मैं बेलूड़ मठ से उद्बोधन गया। शरत् महाराज उस समय अपने छोटे कमरे में बैठकर तम्बाकू पी रहे थे। मैंने कहा, ''महाराज, यह आवश्यक पत्र मठ कार्यालय से आपके लिए लाया हूँ।'' उन्होंने तत्क्षण तम्बाकू की नली को पास में रख दिया। तदुपरान्त चश्मा पहनकर कैंची से लिफाफा काटकर पत्र को पढ़ा। तत्पश्चात् कैंची को उसके स्थान पर रखकर, पत्र को लिफाफा के भीतर डालकर मेज के दाहिनी ओर रखा; अनन्तर नली को पकड़कर तम्बाकू पीना आरम्भ किया। उनका यह आचरण देखकर मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि उनका मन सदा ईश्वर में निमग्न है। ठाकुर के कार्य करने हेतु मन को नीचे ले आते हैं और पुनः कार्य समाप्त होने पर ईश्वर के सान्निध्य में मग्न होकर रहते हैं।''

१९६१ ई. में गुड फ्राइडे के दिन स्वामी शंकरानन्द जी महाराज से मेरी दीक्षा हुई। मेरे पास कुछ रुपया-पैसा नहीं था। दीक्षा हेतु फल-मिठाई खरीदना होगा और दक्षिणा देना होगा। अद्वैत आश्रम का पैसा किसी भी धार्मिक अनुष्ठान में खर्च नहीं हो सकता था। विधान महाराज (स्वामी महादेवानन्द) ने किसी से माँगकर मुझे दो रुपये दिये। मैं एक रुपया का फल-मिठाई और एक रुपया दक्षिणा हेतु खर्च किया। दीक्षोपरान्त भव महाराज को प्रणाम करने जाने पर उन्होंने पूछा, ''गुरु-दक्षिणा दिये हो?'' मैंने कहा, ''हाँ, महाराज। एक रुपया दिया हूँ।'' उन्होंने कहा, ''नहीं, तुमने गुरु-दक्षिणा नहीं दिया।'' मैंने कहा, ''हाँ, दिया हूँ।'' अन्त में उन्होंने कहा, ''देखो, लोग गुरु-दक्षिणा देते हैं, यह सनातन रीति है। गुरु-सेवा हेतु भक्तगण दक्षिणा देते हैं, किन्तु सही में दक्षिणा हुआ – गुरु ने आज जो बीजमन्त्र तुम्हारे हृदय में रोपण किया है, वह एक दिन वृक्ष के रूप में परिणत होगा। तत्पश्चात् उस वृक्ष में फूल और फल भी होगा। उसी फल को गुरु को अर्पण करना हुआ वास्तव में गुरु-दक्षिणा – अर्थात् भगवान-लाभ। गुरु, शिष्य से वही फल चाहते हैं।''

भव महाराज संन्यासियों के संन्यासी थे। किस प्रकार साधु-जीवन गढ़ना होगा, उसे वे सर्वदा स्मरण करा देते थे। एक दिन विनोद करते हुए उन्होंने कहा, ''देखो, साधु तीन प्रकार के होते हैं – तेल में तला हुआ, घी में तला हुआ, घी में तलकर सीरा में डुबाया हुआ। तेल में तला हुआ साधु बहिर्मुखी प्रवृत्ति का होता है। अच्छा भोजन, अच्छा पोशाक, आराम खोजता फिरता है। घी में तला हुआ साधु अन्तर्मुखी – शास्त्रपाठ, जप-ध्यान लेकर रहता है। ये सब त्यागी और वैराग्यवान होते हैं। तथा घी में तलकर शक्कर के सीरा में डुबाया हुआ संन्यासी होता है – शास्त्रज्ञ और साधक। ये स्वयं को वैराग्य में तलकर भक्तिरस में डूबकर रहते हैं। ये लोग ही ज्ञानमिश्रित भक्ति के प्रभाव से आनन्द में विभोर होकर रहते हैं और सभी को आनन्द देते हैं। देखो, इन तीन समूहों में से किस समूह में तुम जाना चाहते हो।''

तदुपरान्त उन्होंने श्रीम से बेलूड़ मठ के संन्यासियों के विषय में जो सुना था, उसको बताया, ''श्रीम कहते थे, 'मठ के संन्यासी गेरोबाज कबूतरी के समान हैं। वे बहुत ऊपर उड़ती हैं और अन्य कबूतरों को आकर्षित करके स्वयं के दल में मिला लेती हैं।' ''

रामकृष्ण मिशन के संन्यासी समाज में सम्मान पाते हैं, लोग उनपर आस्था रखते हैं, इसके कारण हैं श्रीरामकृष्ण। श्रीरामकृष्ण ही अग्नि हैं। उनके तेज से तेजस्वी होकर हम लोग कड़ाही में आलू-परवल जैसा उछल रहे हैं। क्रिस्टोफर ईश्वरवूड ने लिखा : The Ramakrishna Movement is unique because its Founder was unique. अर्थात् रामकृष्ण आन्दोलन अद्वितीय है, क्योंकि इसके संस्थापक अद्वितीय थे। स्वामी शंकरानन्द जी महाराज ने एक बार एक साधु-शिष्य से कहा, ''देखो, ठाकुर का भक्त होना। ठाकुर के भक्तों का भक्त नहीं होना।'' काम-कांचन त्यागी ठाकुर के आदर्श को दृढ़भाव से पकड़े रहने के लिए भव महाराज हम सभी को सदा स्मरण करा देते थे।

एक दिन मैंने उनसे पूछा था, ''महाराज, ठाकुर को कैसे पकड़ा जाये?''

इसके उत्तर में उन्होंने श्रीम से जो कहानी सुनी थी, उसको बताया, ''नवविवाहिता लड़की ससुराल में जाना नहीं चाहती, क्योंकि वहाँ पर सभी अपरिचित और स्थान अज्ञात है। १८-२० वर्ष माँ-बाप के पास व्यतीत किया है। प्रथम दर्शन में ही क्या नवविवाहिता दुल्हन का पति के प्रति आकर्षण होता है? वह जाना ही नहीं चाहती, कितना रोना-धोना करती है। माँ को पकड़ कर रोती है और माँ उसे समझा कर कहती है, 'वही तुम्हारा पति और वही तुम्हारा घर है। वहीं पर तो तुमको पूरा जीवन व्यतीत करना होगा। उसका घर सँवारना होगा।' वह बाप को पकड़ कर रोती है, बाप समझाकर कहता है, 'अपने पतिदेव को लेकर ही तो तुम्हारा विवाहित जीवन व्यतीत होगा। क्या कोई लड़की पूरा जीवन बाप के घर में रहती है? तुम आते रहना और हम लोग भी तुमको देखने जाया करेंगे।'

''तदुपरान्त लड़की तो ससुराल में चली गयी। एक-दो पुत्र-पुत्री हुई। अनेक दिन पिता के घर जाना हुआ नहीं। पिता उसको पत्र लिखते है : 'तुम्हारी माँ तुमको देखना चाहती है। एक बार आकर देख लो। कई दिन हुए तुम आयी नहीं हो।' लड़की उत्तर लिखती है : 'अभी कैसे आऊँ? मेरी पुत्री अस्वस्थ है, बाद में पुत्र की परीक्षा है, इसके अतिरिक्त आपके दामाद को कार्यालय जाने के पहले भोजन तैयार करके कौन देगा?' इस प्रकार अनेक बहाना बनाकर पत्र लिखती है। जो लड़की पहले-पहल पति के साथ जाना ही नहीं चाह रही थी, अभी वह उसको छोड़कर जाना ही नहीं चाहती। ठीक उसी प्रकार, भगवान के साथ, 'वही तुम्हारे पति, वही तुम्हारा घर' इस प्रकार का सम्बन्ध बनाने पर संसार के प्रति और आकर्षण नहीं रहेगा।''

भव महाराज ने श्रीम से और एक कहानी सुनी थी, जिसे मुझे बताया था, ''मास्टर महाशय के पास प्रतिदिन कई भक्त सत्संग करने के लिए आया करते थे। एक दिन एक भक्त ने आकर कहा, 'संसार में बहुत दुख-कष्ट है।' श्रीम ने नेत्र बड़ा-बड़ा करके गम्भीर होकर सुना। तदुपरान्त उपस्थित सभी को एक-एक करके कहने लगे – 'आप लोगों ने सुना, ये कह रहे हैं कि संसार में बहुत दुख-कष्ट है।' उन्होंने जैसे इस बात को सभी के द्वारा प्रमाणित करा लिया। तदुपरान्त श्रीम स्वयं ही कहने लगे, 'देखिए, पूरी रात बोतल पर बोतल शराब पिये हैं, तो नशा होगा नहीं? पैर लड़खड़ायेगा कि नहीं? शराब पीने से नशा नहीं होगा क्या? संसार रूपी शराब का नशा किया है, तो दुख-कष्ट नहीं होगा?' ''

२७/०४/१९६१ को बेलूड़ मठ में भव महाराज ने ब्रह्मचारी के शिखा, सूत्र और कच्छामुक्त रूपक की व्याख्या की : (१) शिखा – अग्निशिखा। अग्नि क्या? ज्ञानाग्नि। वह मस्तक के ऊपर रहती है। इसका अर्थ हुआ ब्रह्मचारी का चिन्तन सदैव ऊर्ध्वमुखी अर्थात् भगवन्मुखी होना चाहिए। (२) सूत्र – यज्ञसूत्र या जनेऊ। सूत्र अर्थात् प्राप्त करने का उपाय। किसका उपाय? यज्ञ का। क्या यज्ञ? कर्मयज्ञ। अर्थात् हमलोग ईश्वरीय कर्म करने का या ईश्वर-प्राप्ति का सूत्र या उपाय प्राप्त किये हैं। (३) कच्छ या कच्छा। कच्छामुक्त मतलब बन्धनहीन। वैदिक क्रियाकाण्ड में त्रिकच्छ (काच्छा, जनेऊ और उत्तरीय) के बिना अनुष्ठान नहीं होता।

१९६४-१९६५ ई. में मैं बेलूड़ मठ के प्रशिक्षण केन्द्र में था। उस समय भव महाराज के साथ घनिष्ठ रूप से रहने का सुयोग मिला था। पुराना प्रशिक्षण केन्द्र। एसबेस्टस सीट का मकान था। दाहिनी ओर कक्षा के लिए दो कमरे थे। बायीं ओर भव महाराज का कमरा और पुस्तकालय था। उसके पास वाला कमरा महाराज के सेवक का कमरा और भण्डार-घर था। सामने ५-६ कमरे थे। प्रत्येक कमरा में तीन-तीन ब्रह्मचारी रहा करते थे। मेरे लिए तथा अन्य तीन ब्रह्मचारियों के लिए वहाँ पर रहने का स्थान नहीं हुआ। इसीलिए हम चार लोग वर्तमान में ट्रस्टी भवन के ऊपरी तल्ला के दायीं ओर के पहले कमरे में रहते थे। बाथरूम के लिए साधु-निवास में जाना पड़ता था। प्रतिदिन गंगास्नान करता था और प्रतिज्ञा किया था कि ठाकुर का मुँह देखे बिना किसी का मुँह नहीं देखूँगा। दो वर्ष तक प्रतिदिन ठाकुर का दर्शन शीतकाल और वर्षाकाल में भी किया हूँ। ज्वर होने के कारण मात्र तीन-चार दिन मुझे साधु-निवास में रहना पड़ा था, जिसके कारण मैं मंगल-आरती में जा नहीं पाया। फिर भी शंखध्वनि सुनकर ठाकुर का चिन्तन करता था। भव महाराज नित्य मंगल-आरती जाया करते थे। तदुपरान्त अपने कमरे में जाकर मच्छरदानी के भीतर बैठकर जप-ध्यान किया करते थे। सन्ध्या समय थोड़ा-बहुत घूम-फिर करके आते और मच्छरदानी के भीतर बैठकर जप-ध्यान करते थे। बेलूड़ मठ के मच्छर साधु-भक्तवृन्द का रक्त चूसकर जैसे मुक्त हो गये हैं। अभी तो जैसे मच्छर हैं ही नहीं। **(क्रमशः)**

बेलूड़ मठ – परिदर्शन

राज्य सामाजिक और न्याय और विकास मन्त्री ***श्रीमती प्रतिमा भौमिक*** ने १३ सितम्बर, २०२१ को बेलूड़ मठ का परिदर्शन किया।

फिनलैंड के राजदूत **रीत्वा कौकू-रान्डे** ने १८ सितम्बर, २०२१ को बेलूड़ मठ का परिदर्शन किया।

महाराष्ट्र के राज्यपाल श्री **भगत सिंह कोश्यारी** ने रामकृष्ण मठ, मुम्बई का भ्रमण किया।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण के उपाध्यक्ष और रामकृष्ण मठ, चेन्नई के अध्यक्ष पूज्य स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने १० सितम्बर, २०२१ पावन गणेश गतुर्थी के दिन तंजौर मठ के ग्रामीण केन्द्र में पुनर्नवीनीकृत रामकृष्ण मन्दिर का उद्घाटन किया।

रामकृष्ण मिशन **विवेकानन्द विश्वविद्यालय, बेलूड़ मठ** ने ११ सितम्बर, २०२१ को वार्षिक दीक्षान्त समारोह आयोजित किया और मुख्य परिसर बेलूड़ मठ और आफलाइन नरेन्द्र और राँची द्वारा २७५ प्रतिनिधियों को डीगरी और डिप्लोमा से पुरस्कृत किया। कोरोना के कारण अधिकांश छात्रों ने वर्चुअल मोड में कार्यक्रम में भाग लिया। रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव और विवेकानन्द विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्रीमत् स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज ने आनलाईन प्रोग्राम में वीडियो द्वारा अपना संदेश प्रदान किया।

रामकृष्ण मिशन, बड़ोदरा ने एक आनलाईन व्याख्यान प्रतियोगिता आयोजित की, जिसमें भारत के २२ राज्यों के १०३१ छात्रों ने भाग लिया।

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में व्याख्यान आयोजित हुआ

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर द्वारा संचालित 'विवेकानन्द मानव प्रकर्ष संस्थान' द्वारा ***'स्वामी आत्मानन्द स्मृति व्याख्यानमाला'*** के अन्तर्गत ***६ अक्तूबर, २०२१*** को आयोजित हुआ। इस अवसर पर कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए ***रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज*** ने कहा कि संसार जीवन का लक्ष्य नहीं होना चाहिए, अपितु संसार को साधन बनाकर जीवन का उद्देश्य प्राप्त करना चाहिए। मनुष्य की कोई भी भौतिक उपलब्धि उसे तनिक भी शान्ति नहीं दे सकती है, इसलिये जीवन का उद्देश्य ईश्वर-प्राप्ति ही होनी चाहिए। कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि ***रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के सचिव स्वामी व्याप्तानन्द जी*** महाराज ने कहा कि मनुष्य को अपनी प्रतिभा के प्रकटन हेतु अहं का त्याग करना पड़ता है। मनुष्य जीवन का उद्देश्य ईश्वर-लाभ है और सेवा ही इसका मार्ग है। उन्होंने विद्यार्थियों को पाँच लक्षण – लक्ष्य-निर्धारण, लक्ष्य प्राप्ति हेतु ध्यान, आलस्य का त्याग आदि बिन्दुओं पर प्रकाश डालते हुए अच्छे नागरिक बनने का आह्वान किया।

कार्यक्रम के मुख्य वक्ता **रामकृष्ण मिशन आश्रम, भोपाल** के ***सचिव स्वामी नित्यज्ञानानन्द जी महाराज*** ने ***'शिवभाव से जीवसेवा'*** पर व्याख्यान देते हुए कहा कि वे स्वामी आत्मानन्द जी की प्रेरणा से संन्यासी बने। रामकृष्ण भावधारा द्वारा किये जा

रहे सभी कार्यों के मूल में 'शिवभाव से जीवसेवा' की भावना समाहित है। यदि कोई किसान खेत में और कोई मजदूर फैक्ट्री में समर्पण की भावना से कार्य करता है, तो उसका कार्य ही ईश्वर-सेवा हो जाता है। कार्यक्रम का संचालन श्रीमती मीनाक्षी तिवारी ने और अतिथियों का स्वागत श्री वीरेन्द्र वर्मा ने किया।